श्री चंपकमाला चरित्र एवं कयवन्ना चरित्र

संपादक :

आचार्य श्री जयानंदसूरीश्वरजी म.सा.

।। श्री चमत्कारी पार्श्वनाथाय नमः ।।

।। प्रभु श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी गुरुभ्यो नमः ।।

श्री यतीन्द्रसूरीश्वरजी विरचित
श्री चंपकमाला चरित्र
एवं कयवन्ना चरित्र

दिव्याशीष

आचार्यदेव श्री विद्याचंद्रसूरीश्वरजी

मुनिराज श्री रामचंद्रविजयजी

संपादक

आचार्य श्री जयानंदसूरीश्वरजी

भाषांतर

मुनिश्री रैवतचंद्रविजयजी

प्रकाशक

गुरुश्री रामचंद्र प्रकाशन समिति - भीनमाल

मुख्य संरक्षक

(१) श्री संभवनाथ राजेन्द्रसूरिश्वे. ट्रस्ट कंदुलावारी स्ट्रीट, विजयवाडा.

(२) मुनिराज श्री जयानंद विजयजी आदि ठाणा की निश्रा में वि. २०६५में शत्रुंजय तीर्थे चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस निमित्ते

लेहर कुंदन ग्रुप

मुंबई, दिल्ली, चेन्नई, हरियाणा,

श्रीमती गेरीदेवी जेठमलजी बालगोता परिवार मेंगलवा.

(३) एक सद्गृहस्थ - भीनमाल

(४) संघवी उत्तमकुमार, सन्तोषदेवी, कुणाल, मेघा बेटा-पोता रीखबचंदजी ताराजी नागोत्रा सोलंकी परिवार, बाकरा-राजस्थान.

R.T. SHAH & Co.

१, सांबयार स्ट्रीट, जार्ज टाऊन-चेन्नई-६०० ००१

संरक्षक

(१) सुमेरमल केवलजी नाहर, भीनमाल, राज.
के. एस. नाहर, २०१ सुमेर टॉवर, लव लेन, मझगांव, मुंबई-१०.

(२) मीलियन ग्रुप, सूराणा, मुंबई, दिल्ली, विजयवाड़ा.

(३) एम. आर. इम्पेक्स, १६-ए, हनुमान टेरेस, दूसरा माला, ताराटेम्पल लेन, लेमीग्टन रोड, मुंबई-७. फोन : २३८०१०८६.

(४) श्री शांतिदेवी बाबुलालजी बाफना चेरीटेबल ट्रस्ट, मुंबई. महाविदेह भीनमालधाम, पालीताना-३६४२७०.

(५) संघवी जुगराज, कांतिलाल, महेन्द्र, सुरेन्द्र, दिलीप, धीरज, संदीप, राज, जैनम, अक्षत बेटा पोता कुंदनमलजी भुताजी श्रीश्रीमाळ, वर्धमान गौत्रीय आहोर (राज.) कल्पतरू ज्वेलर्स, ३०५, स्टेशन रोड संघवी भवन, थाना (प.) महाराष्ट्र.

(६) अति आदरणीय वडील श्री नाथालाल तथा पू. पिताजी चीमनलाल, गगलदास, शांतिलाल तथा मोंघीबेन अमृतलाल के आत्मश्रेयार्थे चि. निलांग के वरसीतप, प्रपौत्री भव्या के अट्ठाई वरसीतप अनुमोदनार्थ दोशी वीजुबेन चीमनलाल डायालाल परिवार, अमृतलाल चीमनलाल दोशी पांचशो वोरा परिवार, थराद-मुंबई.

(७) शत्रुंजय तीर्थे नव्वाणुं यात्रा के आयोजन निमित्ते शा. जेठमल, लक्ष्मणराज, पृथ्वीराज, प्रेमचंद, गौतमचंद, गणपतराज, ललीतकुमार, विक्रमकुमार, पुष्पक, विमल, प्रदीप, चिराग, नितेष बेटा-पोता कीनाजी संकलेचा परिवार मेंगलवा, फर्म -अरिहन्त नोवेल्हटी, GF3 आरती शोपींग सेन्टर, कालुपुरटंकशाला रोड, अहमदाबाद. पृथ्वीचंद अेन्ड कं.,तिरुचिरापली.

(८) थराद निवासी भणशाळी मधुबेन कांतिलाल अमुलखभाई परिवार.

(९) शा कांतीलाल केवलचंदजी गांधी सियाना निवासी द्वारा २०६३ में पालीताना में उपधान करवाया उस निमित्ते.

(१०) 'लहेर कुंदन ग्रुप' शा जेठमलजी कुंदनमलजी मेंगलवा (जालोर)

(११) २०६३ में गुडा में चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस समय पद्मावती सुनाने के उपलक्ष में शा चंपालाल, जयंतिलाल, सुरेशकुमार, भरतकुमार, प्रिन्केश, केनित, दर्शित चुन्नीलालजी मकाजी काशम गौत्र त्वर परिवार गुडाबालोतान् जयचिंतामणि १०-५४३ संतापेट नेल्लूर-५२४००१ (आ.प्र.)

(१२) पू. पिताश्री पूनमचंदजी मातुश्री भुरीबाई के स्मरणार्थे पुत्र पुखराज, पुत्रवधु लीलाबाई पौत्र फुटरमल, महेन्द्रकुमार, राजेन्द्रकुमार, अशोककुमार मिथुन, संकेश, सोमील, बेटा पोता परपोता शा. पूनमचंदजी भीमाजी रामाणी गुडाबालोतान् 'नाकोडा गोल्ड' ७०, कंसारा चाल, बीजामाले, रूम नं. ६७, कालबादेवी, मुंबई-२

(१३) शा सुमेरमल, मुकेशकुमार, नितीन, अमीत, मनीषा, खुशबु बेटा पोता पेराजमलजी प्रतापजी रतनपुरा बोहरा परिवार, मोदरा (राज.) राजरतन गोल्ड प्रोड. के. वी. एस. कोम्प्लेक्ष, ३/१ अरुंडलपेट, गुन्टूर A.P.

(१४) एक सद्गृहस्थ, धाणसा.

(१५) गुलाबचंद डॉ. राजकुमार, निखीलकुमार, बेटा पोता परपोता शा छगनराजजी पेमाजी कोठारी, आहोर, अमेरिका : ४३४१, स्कैलेण्ड ड्रीव अटलान्टा जोर्जिया U.S.A.-३०३४२. फोन : ४०४-४३२-३०८६/६७८-५२१-११५०

(१६) शांतिरूपचंद रविन्द्रचंद, मुकेश, संजेश, ऋषभ, लक्षित, यश, ध्रुव, अक्षय बेटा पोता मिलापचंदजी महेता जालोर, बेंगलोर.

(१७) वि.सं.२०६३ में आहोर में उपधान तप आराधना करवायी एवं पद्मावती श्रवण के उपलक्ष में पिताश्री थानमलजी मातुश्री सुखीदेवी, भंवरलाल, घेवरचंद, शांतिलाल, प्रवीणकुमार, मनीष, निखिल, मित्तुल, आशीष, हर्ष, विनय, विवेक बेटा पोता कनाजी हकमाजीमुथा, शा. शांतिलाल प्रवीणकुमार एन्ड को. राम गोपाल स्ट्रीट, विजयवाडा. भीवंडी, इचलकरंजी.

(१८) बाफना वाडी में जिन मन्दिर निर्माण के उपलक्ष में मातुश्री प्रकाशदेवी चंपालालजी की भावनानुसार पृथ्वीराज, जितेन्द्रकुमार, राजेशकुमार, रमेशकुमार, वंश, जैनम, राजवीर, बेटा पोता चंपालाल सांवलचन्दजी बाफना, भीनमाल. नवकार टाइम, ५१, नाकोडा स्टेट न्यु बोहरा बिल्डींग, मुंबई-३.

(१९) शा शांतिलाल, दीलीपकुमार, संजयकुमार, अमनकुमार, अखीलकुमार, बेटा पोता मूलचंदजी उमाजी तलावत आहोर (राज.) राजेन्द्रा मार्केटींग, विजयवाडा.

(२०) श्रीमती सकुदेवी सांकलचंदजी नेथीजी हुकमाणी परिवार, पांथेडी, राज. राजेन्द्र ज्वेलर्स, ४-रहेमान भाई बि. एस. जी. मार्ग, ताडदेव, मुंबई-३४.

(२१) पूज्य पिताजी श्री सुमेरमलजी की स्मृति में मातुश्री जेठीबाई की प्रेरणा से जयन्तिलाल, महावीरचंद, दर्शन, बेटा पोता सुमेरमलजी वरदीचंदजी आहोर, जे. जी. इम्पेक्स प्रा.लि. - ५५ नारायण मुदली स्ट्रीट, चेन्नई-७९.

(२२) स्व. हस्तीमलजी भलाजी नागोत्रा सोलंकी की स्मृति में हस्ते परिवार बाकरा (राज.)

(२३) मुनिश्री जयानंद विजयजी की निश्रा में लेहर कुंदन ग्रुप द्वारा शत्रुंजय तीर्थे २०६५ में चातुर्मास उपधान करवाया उस समय के आरधक एवं अतिथि के सर्व साधारण की आय में से सवंत २०६५.

(२४) मातुश्री मोहनीदेवी, पिताश्री सांवलचंदजी की पुण्यस्मृति में शा पारसमल सुरेशकुमार, दिनेशकुमार, कैलाशकुमार, जयंतकुमार, बिलेश, श्रीकेष, दीक्षिल, प्रीष कबीर, बेटा पोता सोवलचंदजी कुंदनमलजी मेंगलवा, फर्म : Fybros Kundan Group, ३५ पेरुमल मुदली स्ट्रीट, साहुकार पेट, चेन्नई-१. Mengalwa, Chennai, Delhi, Mumbai.

(२५) शा सुमेरमलजी नरसाजी -मेंगलवा, चेन्नई.

(२६) शा दूधमलजी, नरेन्द्रकुमार, रमेशकुमार बेटा पोता लालचंदजी मांडोत परिवार बाकरा (राज.) मंगल आर्ट, दोशी बिल्डींग, ३-भोईवाडा, भूलेश्वर, मुंबई-२

(२७) कटारीया संघवी लालचंद, रमेशकुमार, गौतमचंद, दिनेशकुमार, महेन्द्रकुमार, रविन्द्रकुमार बेटा पोता सोनाजी भेराजी धाणसा (राज.) श्री सुपर स्पेअर्स, ११-३१-३A पार्क रोड, विजयवाडा, सिकन्द्राबाद.

(२८) शा नरपतराज, ललीतकुमार, महेन्द्र, शैलेष, निलेष, कल्पेश, राजेश, महीपाल, दिक्षीत, आशीष, केतन, अश्वीन, रींकेश, यश, मीत, बेटा पोता खीमराजजी थानाजी कटारीया संघवी आहोर (राज.) कलांजली ज्वेलर्स, ४/२ ब्राडी पेठ, गुन्टूर-२.

(२९) शा लक्ष्मीचंद, शेषमल, राजकुमार, महावीरकुमार, प्रविणकुमार, दिलीपकुमार, रमेशकुमार बेटा पोता प्रतापचंदजी कालुजी कांकरीया मोदरा (राज.) गुन्टूर.

(३०) एक सद्गृहस्थ (खाचरौद)

(३१) श्रीमती सुआदेवी घेवरचंदजी के उपधान निमित्ते चंपालाल, दिनेशकुमार, धर्मेन्द्रकुमार, हितेशकुमार, दिलीप, रोशन, नीखील, हर्ष, जैनम, दिवेश बेटा पोता घेवरचंदजी सरेमलजी दुर्गाणी बाकरा. हितेन्द्र मार्केटींग, 11-X-2-Kashi, चेटी लेन, सत्तर शाला कोम्प्लेक्स, पहला माला, चेन्नई-७९.

(३२) मंजुलाबेन प्रवीणकुमार पटीयात के मासक्षमण एवं स्व. श्री भंवरलालजी की स्मृति में प्रवीणकुमार, जीतेशकुमार, चेतन, चिराग, कुणाल, बेटा पोता तिलोकचंदजी धर्माजी पटियात धाणसा. पी.टी.जैन, रोयल सम्राट, ४०६-सी वींग, गोरेगांव (वेस्ट), मुंबई-६२.

(३३) गोल्ड मेडल इन्डस्ट्रीस प्रा. ली., रेवतडा, मुंबई, विजयवाडा, दिल्ली. जुगराज ओटमलजी ए ३०१/३०२, वास्तुपार्क, मलाड (वेस्ट), मुंबई-६४

(३४) राज राजेन्द्र टेक्सटाईल्स, एक्सपोर्टस लिमीटेड, १०१, राजभवन, दौलतनगर, बोरीवली (ईस्ट), मुंबई, मोधरा निवासी.

(३५) प्र. शा. दी. वि. सा. श्री मुक्तिश्रीजी की सुशिष्या मुक्ति दर्शिताश्रीजी की प्रेरणा से स्व. पिताजी दानमलजी, मातुश्री तीजोबाई की पुण्य स्मृति में चंपालाल, मोहनलाल, महेन्द्रकुमार, मनोजकुमार, जितेन्द्रकुमार, विकासकुमार, रविकुमार, रिषभ, मिलन, ह्रितिक, आहोर. कोठारी मार्केटींग, १०/११ चितुरी कॉम्पलेक्ष, विजयवाडा.

(३६) पिताजी श्री सोनराजजी, मातुश्री मदनबाई परिवार द्वारा समेतशिखर यात्रा प्रवास एवं जीवित महोत्सव निमित्ते दीपचंद उत्तमचंद, अशोककुमार, प्रकाशकुमार, राजेशकुमार, संजयकुमार, विजयकुमार, बेटापोता सोनराजजी मेघाजी कटारीया संघवी धाणसा. अलका स्टील ८५७ भवानी पेठ, पूना-२.

(३७) मुनि श्री जयानंद विजयजी आदी ठाणा की निश्रा में सवंत २०६६ में तीर्थेन्द्र नगरे-बाकरा रोड मध्ये चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस निमित्ते हस्ते श्रीमती मैतीदेवी पेराजमलजी रतनपुरा वोहरा परिवार-मोधरा (राजस्थान)

(३८) मुनि श्री जयानंद विजयजी आदी ठाणा की निश्रा में सवंत २०६२ में पालीताना में चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस निमित्ते शांतीलाल, बाबुलाल, मोहनलाल, अशोककुमार विजयकुमार, श्री हंजादेवी सुमेरमलजी नागोरी परीवार-आहोर.

(३९) संघवी कांतिलाल, जयंतिलाल गणपतराज राजकुमार, राहुलकुमार समस्त श्रीश्रीश्रीमाल गुडाल गोत्र फुआनी परिवार आलासण. संघवी इलेक्ट्रीक कंपनी, ८५, नारायण मुदली स्ट्रीट, चेन्नई-६०० ०७९.

(४०) संघवी भंवरलाल मांगीलाल, महावीर, नीलेश, बन्टी, बेटा पोता हरकचंदजी श्री श्रीमाल परिवार आलासन. राजेश इलेक्ट्रीकल्स ४८, राजा बिल्डींग, तिरुनेलवेली-६२७ ००१.

(४१) शा. कान्तीलालजी, मंगलचन्दजी हरण, दाँसपा, मुंबई.

(४२) शा भंवरलाल, सुरेशकुमार, शैलेषकुमार, राहुल बेटा पोता तेजराजजी संघवी कोमतावाला भीनमाल, एस. के. मार्केटींग, राजरतन इलेक्ट्रीकल्स-२०, सम्बीयार स्ट्रीट, चेन्नई-६०००७९.

(४३) शा समरथमल, सुकराज, मोहनलाल, महावीरकुमार, विकासकुमार, कमलेश, अनिल, विमल, श्रीपाल, भरत फोला मुथा परिवार सायला (राज.) अरुण एन्टरप्राइजेस, ४ लेन ब्राडी पेठ, गुन्टूर-२.

(४४) शा गजराज, बाबुलाल, मीठालाल, भरत, महेन्द्र, मुकेश, शैलेस, गौतम, नीखील, मनीष, हनी बेटा-पोता रतनचंदजी नागोत्रा सोलंकी साँथू (राज.) - फूलचंद भंवरलाल, १८० गोवींदाप्पा नायक स्ट्रीट, चेन्नई-१

(४५) भंसाली भंवरलाल, अशोककुमार, कांतिलाल, गौतमचंद, राजेशकुमार, राहुल, आशीष, नमन, आकाश, योगेश, बेटा पोता लीलाजी कसनाजी मु. सुरत. फर्म : मंगल मोती सेन्डीकेट, १४/१५ एस. एस. जैन मार्केट, एम. पी. लेन, चीकपेट क्रोस, बेंगलोर-५३.

(४६) बल्लु गगनदास विरचंदभाई परिवार, थराद.

(४७) श्रीमती मंजुलादेवी भोगीलाल वेलचन्द संघवी धानेरा निवासी. फेन्सी डायमण्ड, ११ श्रीजी आर्केड, प्रसाद चेम्बर्स के पीछे, टाटा रोड नं.१-२, ऑपेरा हाऊस, मुंबई-४.

(४८) शा शांतिलाल उजमचंद देसाई परिवार, थराद, मुंबई. विनोदभाई, धीरजभाई, सेवंतीभाई.

(४९) बंदा मुथा शांतिलाल, ललितकुमार, धर्मेश, मितेश, बेटा पोता मेघराजजी फुसाजी ४३, आइदाप्पा नायकन स्ट्रीट, साहुकार पेट, धाणसा हाल चेन्नई-७९.

(५०) श्रीमती बदामीदेवी दीपचंदजी गेनाजी मांडवला चेन्नई निवासी के प्रथम उपधान तप निमित्ते. हस्ते परिवार.

(५१) श्री आहोर से आबू-देलवाडा तीर्थ का छरि पालित संघ निमित्ते एवं सुपुत्र महेन्द्रकुमार की स्मृति में संघवी मुथा मेघराज, कैलाशकुमार, राजेशकुमार, प्रकाशकुमार, दिनेशकुमार, कुमारपाल, करण, शुभम, मिलन, मेहुल, मानव, बेटा पोता सुगालचंदजी लालचंदजी लूंकड परिवार आहोर. मैसुर पेपर सप्लायर्स, ५, श्रीनाथ बिल्डींग, सुल्तान पेट सर्कल, बेग्लोर-५३.

(५२) एक सद्गृहस्थ बाकरा (राज.)

(५३) माइनोक्स मेटल प्रा. लि., (सायला), नं. ७, पी. सी. लेन, एस. पी. रोड क्रॉस, बेग्लोर-२, मुंबई, चेन्नई, अहमदाबाद.

(५४) श्रीमती प्यारीबाई भेरमलजी जेठाजी श्रीश्रीश्रीमाल अग्नि गौत्र, गांव-सरत.

(५५) स्व. पिताश्री हिराचंदजी, स्व. मातुश्री कुसुमबाई, स्व. जेष्ठ भ्राताश्री पृथ्वीराजजी, श्री तेजराजजी आत्मश्रेयार्थ मुथा चुन्निलाल, चन्द्रकुमार, किशोरकुमार, पारसमल, प्रकाशकुमार, जितेन्द्रकुमार, दिनेशकुमार, विकाशकुमार, कमलेश, राकेश, सन्त्रि, आशिष, नीलेश, अंकुश, पुनीत, अभिषेक, मोन्टु, नितिन, आतिश, निल, महावीर, जैनंम, परम, तनमै, प्रनै, बेटा पोता, प्रपोता लडपोता हिराचंदजी, चमनाजी, दांतेवाडिया परिवार, मरुधर में आहोर (राज.). फर्म : हीरा नोवेल्टीस, फ्लॉवर स्ट्रीट, बल्लारी.

(५६) मुमुक्षु दिनेशभाई हालचंद अदानी की दीक्षा के समय आई हुई राशी में से हस्ते हालचंदभाई वीरचंदभाई परिवार थराद, सुरत.

(५७) श्रीमती सुआबाई ताराचंदजी वाणी गोता बागोड़ा. बी. ताराचंद ॲण्ड कंपनी, ए-१८, भारतनगर, ग्रान्ट रोड, मुंबई-४०० ००७.

(५८) २०६९ में मु. जयानंद वि. की निश्रा में श्री बदामीबाई तेजराजजी आहोर, इन्द्रादेवी रमेशकुमारजी गुडा बालोतान एवं मूलीबाई पूनमचंदजी साँथू तीनों ने पृथक्-पृथक् नव्वाणु यात्रा करवायी, उस समय आयोजक एवं आराधकों की ओर से उद्यापन की राशी में से। पालीताना.

(५९) शा जुगराज फूलचंदजी एवं सौ. कमलादेवी जुगराजजी श्रीश्रीश्रीमाल चन्द्रावण गोता के जीवित महोत्सव पद्मावती सुनाने के प्रसंग पर - कीर्तिकुमार, महेन्द्रकुमार, निरंजनकुमार, विनोदकुमार, अमीत, कल्पेश, परेश, मेहुल वेश आहोर. महावीर पेपर ॲण्ड जनरल स्टोर्स, २२-२-६, क्लोथ बाजार, गुन्टुर.

(६०) शा जुगराज, छगनलाल, भंवरलाल, दरगचंद, घेवरचंद, धाणसा. मातुश्री सुखीबाई मिश्रीमलजी सालेचा. फर्म : श्री राजेन्द्रा होजीयरी सेन्टर, मामुल पेट, बेंग्लोर-५३.

(६१) श्री तीर्थेन्द्रनगर तीर्थे २०७० वर्षे श्री पंचमंगल महाश्रुतस्कंध उपधान तप आराधना निमित्ते संघवी श्रीमती पातीदेवी भारतमलजी भगाजी वेद मुथा सुपुत्र मांगीलाल, गणपतचंद, रमेशकुमार, कैलाशकुमार, सुपौत्र ललित, मुकेश, निर्मळ, दिनेश, प्रवीण, राजेश, संजय, अरविंद, विक्रम, युवराज, जितेश, परिवार रेवतडा-बेंगलोर, फर्म : शा. सुमेरमल मांगीलाल, मामुलपेट, बेंगलोर-५६० ०५३.

(६२) स्व. सुमटीबाई घेवरचंदजी शेषमलजी श्रीश्रीश्रीमाल चन्द्रावण गौत्र के स्व द्रव्य से पारणा मन्दिर की प्रतिष्ठा निमित्ते आहोर (कल्याण) ।

(६३) श्रीमती भवरीबाई एवं कान्तिलालजी शेषमलजी श्रीश्रीश्रीमाल चन्द्रावण गोत्र के जीवित महोत्सव निमित्ते (आहोर) । कान्ति ज्वेलर्स एवं आर. फन. सिटी, घेलादेवजी चौक, कल्याण, जि. थाना, (महा०)

सह संरक्षक

(१) शा तीलोकचंद मयाचन्द एन्ड कं. ११६, गुलालवाडी, मुंबई-४

(२) शा ताराचंद भोनाजी आहोर मेहता नरेन्द्रकुमार एण्ड कुं. पहला भोईवाडा लेन, मुंबई-२.

(३) स्व. मातृश्री मोहनदेवी पिताजी श्री गुमानमलजी की स्मृति में पुत्र कांतिलाल जयन्तिलाल, सुरेश, राजेश सोलंकी जालोर. प्रविण एण्ड कं. १५-८-११०/२, बेगम बाजार, हैदराबाद-१२.

(४) १९९२ में बस यात्रा प्रवास, १९९५ में अट्ठाई महोत्सव एवं संघवी सोनमलजी के आत्मश्रेयार्थे नाणेशा परिवार के प्रथम सम्मेलन के लाभ के उपलक्ष्य में संघवी भबुतमल जयंतिलाल, प्रकाशकुमार, प्रविणकुमार, नवीन, राहुल, अंकूश, रितेश नाणेशा, प्रकाश नोवेल्टीज्, सुन्दर फर्नीचर, ७९४, सदाशीव पेठ, बाजीराव रोड, पूना-४११ ०३० (सियाणा)

(५) सुबोधभाई उत्तमलाल महेता धानेरा निवासी, कलंकत्ता.

(६) पू. पिताजी ओटमलजी मातुश्री अतीयाबाई प. पवनीदेवी के आत्मश्रेयार्थ किशोरमल, प्रवीणकुमार (राजु) अनिल, विकास, राहुल, संयम, ऋषभ, दोशी चौपड़ा परिवार आहोर, राजेन्द्र स्टील हाउस, ब्राडी पेठ, गुन्टुर (A.P.)

(७) पू. पिताजी शा प्रेमचंदजी छोगाजी की पुण्यस्मृति में मातुश्री पुष्पादेवी. सुपुत्र दिलीप, सुरेश, अशोक, संजय वेदमुथा रेवतडा, (राज.) चेन्नई. श्री राजेन्द्र टॉवर नं.१३, समुद्र मुद्दाली स्ट्रीट, चेन्नई.

(८) पू. पिताजी मनोहरमलजी के आत्मश्रेयार्थ मातुश्री पानीदेवी के उपधान आदि तपश्चर्या निमित्ते सुरेशकुमार, दिलीपकुमार, मुकेशकुमार, ललितकुमार, श्रीश्रीश्रीमाल, गुडाल गोत्र नेथीजी परिवार आलासण. फर्म : M. K. Lights, ८९७, अविनाशी रोड, कोइम्बटूर-६४१ ०१८.

(९) गांधि मुथा, स्व. पिताजी पुखराजजी मातुश्री पानीबाई के स्मरणार्थ हस्ते गोरमल, भागचन्द, नीलेश, महावीर, वीकेश, मीथुन, रीषभ, योनिक बेटा पोता पुखराजजी समनाजी गेनाजी सायला, वैभव ए टु झेड डोलार शोप वासवी महल रोड, चित्रदूर्गा.

(१०) श्रीमती शांतिदेवी मोहनलालजी सोलंकी के द्वितीय वरसीतप के उपलक्ष में हस्ते मोहनलाल विकास, राकेश, धन्या बेटा पोता गणपतचंदजी सोलंकी जालोर, महेन्द्र ग्रुप, विजयवाडा (A.P.)

(११) पू. पिताजी श्री मानमलजी भीमाजी छत्रिया वोरा की पुण्य स्मृति में हस्ते मातुश्री सुआदेवी. पुत्र मदनलाल, महेन्द्रकुमार, भरतकुमार. पौत्र नितिन, संयम, श्लोक, दर्शन सूराणा निवासी कोइम्बटूर.

(१२) स्व. पू. पिताजी श्री पीरचंदजी एवं स्व. भाई श्री कांतिलालजी की स्मृति में माताजी पातीदेवी पीरचंदजी, पुत्र : हस्तीमल, महावीरकुमार, संदीप, प्रदीप, विक्रम, नीलेष, अभीषेक, अमीत, हार्दिक, मानू, तनीश, यश, पक्षाल, नीरव बेटा पोता परपोता पीरचंदजी केवलजी भंडारी-बागरा. पीरचंद महावीरकुमार-मैन बाजार, गुन्टुर.

(१३) श्री सियाणा से बसद्वारा शत्रुंजय-शंखेश्वर छ रि पालित यात्रा संघ २०६५ हस्ते संघवी प्रतापचंद, मूलचन्द, दिनेशकुमार, हितेशकुमार, निखिल, पक्षाल, बेटा पोता पुखराजजी बाल गोता सियाणा. फर्म : जैन इन्टरनेशनल, ९५, गोवींदाप्पा नायकन स्ट्रीट, चेन्नई.

(१४) स्व. पू. पि. शांतिलाल चीमनलाल बलु मातुश्री मधुबेन शांतिलाल, अशोकभाई सुरेखाबेन आदी कुमार थराद, अशोकभाई शांतिलाल शाह. २०१, कोश मेश अपार्टमेन्ट, भाटीया स्कूल के सामने, सांईबाबा नगर, बोरीवली (प.), मुंबई-४०० ०७२.

(१५) शा. जीतमलजी अन्नाजी, मुं. पो. नासोली, वाया-भीनमाल, जि. जालोर (राज.) दादर, मुम्बई. फर्म : अशोका गोल्ड, ७, काका साहेब गाडगील मार्ग, खेड गली, प्रभादेवी,मुम्बई-४०००२५

(१६) हिम्मतराज, सुरेश, अरविन्द, तनेश, दिव्य, कटारीया संघवी बेटा-पोता गणेशमलजी, कनाजी, सांचौर (राज.) फर्म : एम्पायर मेटल्स इन्डिया, मुंबई

(१७) श्रीमती पूज्य मातुश्री विमलाबाई एवं पिताश्री मिश्रीमलजी की पावन स्मृति में पुत्र राजेशकुमार मिश्रीमलजी मगाजी सालेचा, मोघरा (राज.) फर्म : राजगुरु इन्टरप्राईज, चेन्नई (तामिलनाडु)

श्री चमत्कारी पार्श्वनाथाय नमो नमः
प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वराय नमो नमः

श्री चंपकमाला चरित्र

तीनों लोक में व्याप्त होनेवाले तथा अनुपमावाले जिसके उदार गुणावली को गा-गा करके दूसरें कितने ही पाप रहित होकर शिव पद को प्रास हुए हैं, ऐसे सूर्य की कान्ति को जीतनेवाले उस तेज पुंजमय को प्रणाम कर, मैं चंपकमालिका के सुंदर चरित्र को सद्-बुद्धिमंतों के प्रीति के लिए करता हूँ !

प्रथम शिष्टाचार के परिपालन के लिए और विघ्नों के नाश के लिए निज गुरु गौरव पद रूप नमस्कारात्मक मंगल को करते हुए सूची कटाह के न्याय[1] से प्रारब्ध कथा का प्रथम अंग होने से पहले शील माहात्म्य का वर्णन करते है ।

जो कि प्राचीन काल के श्रेष्ठ विद्वानोंने और शिष्ट पुरुषों ने चारों प्रकार के धर्मों में सर्व जीवों पर उपकारीपने से दान के प्राधान्य को कहा है, फिर भी सकल शास्त्रों के पारगामी, महान् तथा आप्त पुरुषों ने उससे भी शील को ही दुष्कर कहा है । निश्चय ही इस अत्यंत श्रेष्ठ शील के रक्षण केलिए ही उन्होंने नव प्रकार की गुप्तिओं का निर्माण किया है । बाल्यकाल से ही जिनका यह समुज्ज्वल शील अखंडित है, वे ही जीव इहलोक और परलोक में धन्यवाद योग्य होतें हैं । यह शील ही चारित्र्य रूप शरीर का प्रिय प्राण है । जैसे प्राण

---

1. सूची कटाह न्यायः- जिसमें अल्प प्रयास साध्य कार्य पहले कर बाद में कठिन कार्य करना, जैसे कि पहले आसान कार्य ऐसा सूई बनाकर फिर कठिन कार्य ऐसे कडाई का करना !

बिना शरीर नहीं शोभता वैसे ही शील बिना विद्यमान चारित्र निष्प्रयोजनकारी ही होता है । अन्य व्रत आदि के भग्न हो जाने पर परिपक्व मिट्टी के बर्तन के समान कोई भी फिर से संधान करने के लिए समर्थ नही हो सकता । अच्छी प्रकार से आराधना कीये गये इस शील का लोकोत्तर अत्यद्भुत प्रभाव तीनों लोके में समस्त भव्य प्राणियों को सुप्रतीत ही है ! इसप्रकार आप्त पुरुषों के मुख से जगत् में सुंदर शील के प्राधान्य को जानकर तथा यथामति उसका संक्षिप्त परिचय देकर मैं अब प्रस्तुत कथा का वर्णन करता हूँ । जैसे कि-

इस जंबूद्वीप के भरतखंड में लक्ष्मी देवी का मनोहर गृह समान और समस्त देशों में तिलक समान मालव नामक देश है, जिसके अनुपम विभूति के लव-लेश को भी स्वर्ग ने प्राप्त नहीं किया था । यह देश अपनी अतुल समृद्धि से अमरपुर को भी लज्जित कर रहा था । इसलिए स्वर्ग से भी अत्यंत बडा यह मालव देश सदा ही शोभित हो रहा था । जैसे स्वर्ग में विमान शोभते हैं वैसे ही उस मालव देश के अत्यंत बड़े नगर देवों के चित्तों को आकर्षित करते हुए शोभ रहे हैं । और जहाँ अत्यंत विशाल नगर हमेशा कमलों से युक्त तथा निर्मल जल से परिपूर्ण असंख्य सरोवर से युक्त दीखायी देते हैं। ऐसे उन नगरों में सकल शास्त्र में पारगामी, विद्याओं में प्रवीण, कार्य रत, भूमि ऊपर आये हुए अनेक देवों के समान मनुष्य निवास कर रहे हैं । उन नगरों में सात-आठ खंडवाले गगन-चुम्बी महल शोभ रहे हैं । तथा जिन नगरों में वैमानिक अप्सराओं के समान सौन्दर्य से गर्वित और सुंदर शील से मंडित, सुस्थिर यौवनवाली समस्त स्त्रियाँ मद से युक्त रहती हैं । निश्चय ही इस देश में दूसरे देशों के बड़े नगरों से भी छोटें नगर विशेष शोभ रहे हैं । विषय-ग्राम में जैसे विविध विषय सुखाई और अत्यंत मनोहर होते हैं, वैसे ही इस

मालव देश की नगरी में कितनी ही स्त्रियाँ और बालिकाएँ सुंकोमल है और कितनी ही विद्युत् के समान गौर वर्णवाली, सुंदर युवावस्था से परिपूर्ण, युवकों के मन को हरण करनेवाली, सुविभूषित सदा ही शोभ रही है । विविध सुंदर बगीचे, वापी, कूएँ और सरोवर तथा अनेक मणिमय, गगन-चुम्बी जिनेश्वर के चैत्यों से सुमंडित छोटे गाँव भी अत्यंत शीघ्र ही विद्वानों के मन को प्रसन्न करने में समर्थ हैं । ऐसे उस देश के नगर जो देव नगर से भी अधिक हो तो वहाँ क्या आश्चर्य है ? अधिक क्या कहें ? जिस नगरी में गये कवि भी अत्यंत हर्षित होते हुए स्वर्ग की भी इच्छा नही करते है । ऐसा लगता है कि सुर और असुर समूह के द्वारा अत्यंत मंथन कीएँ जाते हुए समुद्र ने भय से अपने अंदर रहे हुए सारे रत्न तथा अमृत को वहाँ स्थापित किया हो ?

मालव देशीय पुरुष भी अल्प विद्याभ्यास से कुशाग्र बुद्धि को धारण करनेवालें और शीघ्र ही दूसरों के ईंगित को जाननेवालें तथा सुंदर नीति, युक्ति और सूक्तिओं में निपुण हैं । तथा परस्पर मैत्री भाव का ही आश्रय करते हुए साधु के समान समस्त प्राणियों पर कारुण्य को ही दिखाते हैं । दुर्जनों की संगति की उपेक्षा करते हैं और अत्यंत महान् सद्‌गुरुओं के वचनों की सेवा करते हैं । निज देव-गुरु की भक्ति सर्वदा करनेवालें तथा अति दीन लोगों को दुःखों से उभारनेवाले, हमेशा आर्हत धर्म का परिपालन करनेवाले, सावद्य कार्यों को छोड़नेवाले और प्रतिदिन गुरुओं के मुख से सद्‌धर्म के वाक्यों का श्रवण करनेवाले हैं ।

मालव देश में भू-देवी के शिर के छत्र समान तथा संपूर्ण पृथ्वी में से ताप का अपहरण करती, देव नगरी को भी जीतती उज्जयिनी नामक महान् राज-नगरी शोभ रही है । उस नगरी के चारों ओर गंगा के समान समस्त प्राणिओं के पाप को क्षय

करनेवाली, संपूर्ण सुख करनेवाली, मोक्ष नगरी की सखी सदृश मनोहर शिप्रा महानदी है । नदी के चारों ओर आनंद रूपी मूल को उत्पन्न करनेवाले नंदनवन सदृश मनोहर उपवन फैले हुए हैं । ऐसा लगता है कि अपने से अधिक उन उपवनों को देखकर अत्यंत लज्जा को धारण कर वें नन्दनवन मेरुपर्वत पर आश्रय कर रहे हैं ।

उज्जयिनी नगरी के चारों ओर जैसे किसी प्रीतिमती युवति के साथ प्रीतिमंत पुरुष स्नेह करता है वैसे ही विलासी भँवरों के समूह से युक्त कमलों से भरे शीतल और अगाध जल से संपूर्ण और शत्रुओं को दुर्ग्राह्य ऐसी खाईओं को आश्रय किया हुआ कीला शोभा को धारण कर रहा है । स्वर्ण कलशों से युक्त ऊँचे शिखरोंवाले अनेक गगन-चुम्बी जिनमंदिर जैसे सूर्य किरणों से स्पर्शित हुए मेरुपर्वत के समान शोभा पा रहे हैं । श्रेष्ठिओं के महल के ऊपर स्थापित की हुई अनेक ध्वजाएँ कोटीश्वरपने का अनुमान कराती तथा परिस्फुरायमान देखी जाती है । दातार भी धनिक और अनेक होने से, याचक गण को माँगने से भी अधिक उस प्रकार से वितरण करते थे, जैसे कल्पवृक्ष और चिन्तामणि भी नहीं दे सकते हो । अपने पराक्रम से शत्रुओं को डरानेवाला, संपूर्ण जगत् तल पर व्याप्त प्रातःकाल सूर्य तुल्य अत्यंत तेजस्वी और रण में पराक्रमी यथार्थ नामधारी, विक्रमादित्य राजा इस संपूर्ण पृथ्वी पर शासन कर रहा था । अपनी धीरता से, बल तथा बुद्धि के प्रयोग से और बड़ी उपासना करके उसने अग्निवेताल नामक व्यंतर देव को वशवर्ती किया था । हमेशा वह व्यंतर देव उसके आदेश को पूर्ण करता था । अग्निवेताल के प्रभाव से वह सुखपूर्वक अगम्य देश में जा सका था, अनायास ही अजय शत्रुओं को भी जीत लिया था और इस मनुष्य लोक में भी दिव्य सुख का उपभोग करता था । आजन्म से निर्मल,

अखंडित शील का परिपालन करता हुआ, शत्रुओं का पराभव तथा दीन लोगों का उद्धार करता हुआ, सेवकों तथा कुटुम्बों को सुखी करता हुआ, गुणी लोगों का सत्कार करता हुआ, इस कलिकाल में भी परस्त्री को बहन जानता हुआ न्याय मार्ग से पृथ्वी तल पर शासन कर रहा था।

इसप्रकार से विशिष्ट राजा के आन्तरिक मिथ्यात्व रूप अंधकार समूह को दूर कर महाद्भुत प्रभावशाली **श्रीमान् सिद्धसेनदिवाकराचार्य** ने राजा के हृदय-भवन में सम्यक्त्व रूप सूर्योदय का प्रकटीकरण किया था । पूज्य आचार्य ने स्व निर्मित अपूर्व पवित्र स्तोत्र की महिमा से शिवलिंग के मध्य में से **श्री पार्श्वनाथ प्रभु** के सुंदर बिंब को प्रकटित किया था । प्रतिदिन उस बिंब की पूजा करते हुए राजा विक्रमार्क ने इस जगत् में बहुत ही चमत्कृतियाँ प्राप्त की थी । उसने स्वर्णमय पुरुष से उत्पन्न संपूर्ण स्वर्ण को लोगों में वितरण किया था तथा जगज्जीवों के सदन रूपी इस पृथ्वी को ऋण रहित कर सर्वत्र स्व नाम से संवत्सर स्थापित किया था । राजा स्वयं ही विविध क्लेशों को सहन करता हुआ और समस्तपने से पर दुःखों को दूर करता हुआ मेघ आदि कथाओं को सत्य सिद्ध कर रहा था । वह कलाचार्य के समान संपूर्ण कलाओं का पारगामी होते हुए भी स्वल्प कलाज्ञानवंत लोगों का भी अत्यधिक आदर करता था । इत्यादि बहुत प्रकार से सद्गुण गण से वरिष्ठ **श्रीमान्** विक्रमादित्य राजा शास्त्रज्ञानवंत और विद्यावंत लोगों से शोभित तथा समग्र गुण-गण से विभूषित सभा में सुखासीन, देवलोक में सुधर्मा सभा में सुखासीन इन्द्र के समान शोभित हो रहा था । उस सभा में कितने ही पंडित कला संबंधी अतिदुर्गम चर्चा को करते हुए राजा और सभ्य लोगों का मनोरंजन कर रहे थे । अन्य श्रेष्ठ

विद्वान् तर्क से दुर्बोध तत्त्वों की विचारणा करते हुए समग्र सभा लोगों को आनंदित करते हुए शोभित हो रहे थें । इस प्रकार शास्त्र-शस्त्र आदि विषय संबंधी दुर्गम विचारणा को सुनते हुए राजा ने पूछा- हे पंडितों ! तुम कहो, मैं किस विषम कला को नही जानता हूँ? राजा के ऐसे वचन सुनकर मुख्य सभा के लोगों ने कहा कि- हे स्वामी! बृहस्पति और दैत्यगुरु भी जिन कलाओं को नही जानते हैं, उन विषम कलाओं को भी आप जानते हो ! तथा इस लोक में शस्त्र-शास्त्र संबंधी और बुद्धि से कल्पित समस्त कलाएँ आपके हृदय में सुखपूर्वक निवास कर रही है । यह बात सुनकर कोई चतुर, सुविद्वान् जैसे शिशिर काल में सिर पर अभिषेक किया गया मनुष्य सिर को हिलाता है, वैसे सिर को हिलाकर इसप्रकार से अवसर के उचित वाणी को कहने लगा कि- हे राजन् ! यें समस्त भी पंडित सत्य नहीं कह रहे हैं, किंतु मधुर आलाप के संभाषण से श्रीमान् के मन को रंजित कर रहे हैं । क्योंकि- जो स्वामी स्तुति कारक वास्तविक अथवा अवास्तविक स्तुतिओं के द्वारा प्रिय आलाप से संतुष्ट होनेवाले स्वामिओं को आनंदित करते है, वे जयवंत है । जैसे जल का इच्छुक चातक मेघ को देखकर संतुष्ट होता है, वैसे ही यें धनार्थी विद्वान् जन मधुर उक्ति से आपको आनंदित कर रहे हैं । किन्तु लेश मात्र भी तत्त्व को नहीं समझते हैं ।

हे देव ! यदि आप सत्य पूछते हो तो मैं वाचालपने से उसका समुचित उत्तर देता हूँ ! वाचाल मनुष्य को छोड़कर अन्य कोई भी राजा को उत्तर देने में समर्थ नही हो सकता । हे प्रभु ! आप समस्त कलाओं को जानते हो, यहाँ लेश मात्र भी संदेह नही, फिर भी स्त्रियों के चारित्र्य कला में संपूर्ण रीति से अनजान हो । जो मनुष्य तर्क-अलंकार आदि सभी शास्त्रों के अति गूढार्थ को जानता है और

व्यवहार में असीम चातुर्य को धारण करता है, वह भी स्त्रियों की मानसिक वृत्ति को जान नही पाता ! जो विद्वान् पुरुष अपनी बुद्धि-चातुर्य से देवों को भी ठग सकता है, वह भी मन के अनुकूल विविध क्रीडा करती युवति से ठगा जा सकता है । इसका यह मतलब है कि- विषय क्रीड़ा से युवति कितने ही सादर, धीर और महान् पुरुष को भी ठग सकती है । वे अपनी विविध विलास-चातुर्य-कला समूह से ऐन्द्रजालिक के समान महान् पुरुषों के मन को संमोहित करती हैं, धीर पुरुषों को नौकर समान बनाती है, तो जो स्वरूप से ही मूढ़ पुरुष होते हैं, उनमें स्त्रियों के चरित्र को जानने की कितनी शक्ति हो सकती है ? क्षण भर में ही स्त्रियाँ लोगों को पी जानेवाली मदिरा के समान उन्मादी बनाती हैं । कहा भी है -

ये स्त्रियाँ संमोहित करती है, मद से युक्त बनाती है, विडंबना करती है, निंदा करती है, क्रीड़ा करती है और दुःखित करती है । यें सुंदर नयनोंवाली स्त्रियाँ मनुष्यों के दया से युक्त हृदय में प्रवेश कर क्या-क्या आचरण नहीं करती ? जैसे मरुभूमि में जल से पूर्ण नदी दुर्लभ है, वैसे ही स्त्री के द्वारा उन्मत्त कीये गये पुरुषों के हृदय में तत्त्व विचारणा का प्रकटीकरण अत्यंत दुर्लभ ही होता है । जैसे आकाश में उड़नेवालें पक्षियों के पैरों को जाना नहीं जा सकता और जल में फीरनेवाली मछलियों की चरण पंक्तिओं को जानना अशक्य है, वैसे ही बुद्धिमान् पुरुष भी स्त्री चरित्र को नहीं जान सकता ।

इस लिए मैंने कहा था कि सर्व कलाओं में निपुण होते हुए भी आप स्त्री के चरित्र में अनभिज्ञ हो । ये सभा-लोग केवल प्रिय, मधुर वचन से आपको आनंदित कर रहे हैं ।

इस प्रकार के वचन सुनकर उसके वचन पर श्रद्धालु राजा ने मन में सोचा कि- यह पुरुष संपूर्ण नीति वाक्यों को जाननेवालों में

प्रधान है और समस्त वचन सत्य है । जैसे नीतिशास्त्र में कहा गया है, यह भी वैसे ही कह रहा है । उपाय से बुद्धिमंत पुरुष अपार ऐसे समुद्र के पार को पहुँच सकता है, किन्तु कोई भी कुलटा के पार को पहुँच नहीं सकता, ऐसे समस्त भी नीतिज्ञ पुरुष कहते हैं । यदि यह सत्य है तो मुझे अवश्य ही यह परीक्षण करना चाहिए । क्योंकि लोक में उत्तम ऐसे स्वर्ण की भी क्या परीक्षा नहीं करते है ? सज्जन पुरुष परीक्षा कर ही उनको ग्रहण करते हैं । जैसे कि- कसोटी के पत्थर पर घिसकर, काटकर, अग्नि के ताप से तथा हथोड़े आदि के मार से, इन चारों प्रकार से स्वर्ण की परीक्षा की जाती हैं । वैसे ही चार प्रकार से पुरुषों की परीक्षा की जाय-श्रुत, शील, कुल और कर्म के द्वारा । वैसे ही मैं भी इसका परीक्षण करुँगा, ऐसा विचार कर राजा विक्रमार्क ने भोजन वेला को जानकर सभा को विसर्जित की । राजा मनोहर स्नान गृह में स्नान करने के लिए गया । वहाँ विधि पूर्वक स्नान-विलेपन कर, जिनमंदिर में पूजा कर, बाद में भोजनालय में भोजन किया । पुनः राज सभा में आकर विद्वान् समूह के साथ आलाप करते हुए दिन को व्यतीत किया । ऐसे दिन बीत जाने पर पति चंद्र से मिलने की उत्सुकतावाली रात्री को जानकर, गगन-लक्ष्मी भी सन्ध्या राग के बहाने से विलेपन के समान शोभित हो रही थी । जिसका एक दिन उदय होता है, अन्य दिन अवश्य उसका अस्त भी होता ही है, ऐसे सूचन करते हुए के समान सूर्य भी उस समय धीरे-धीरे अस्ताचल के शिखर पर आरोहण कर रहा था । अस्त प्रायः सूर्य को देखकर वियोग के दुःख को सहन नहीं करती पक्षियाँ शब्द करने लगी । जगत् को आह्लादित करनेवाले सूर्य के अस्त हो जाने पर, लोक का अपकारी गाढ अंधकार चोर के समान समस्त दिशाओं में अत्यंत प्रसारित होने लगा । तब अत्यंत प्रिय सूर्य को तत्काल ही अस्त होते देखकर विरह से खिन्न हुई

कमलिनियाँ सुषमा से रहित सतियों के समान मुर्झाई हुई थी ।

राजा विक्रमादित्य ने विधिवत् संध्या की संपूर्ण क्रिया कर तथा अंतःपुर में आकर शय्या को अलंकृत की । वारांगनाओं के समूहों से उपचारित किया जाता भी मन में सभा में पंडित के द्वारा कहे गये स्त्री चरित्र को देखने के उपाय को विचार करते हुए लेश मात्र भी निद्रा को प्राप्त नहीं करते हुए विचारने लगा कि- सभा में उस पंडित ने जो कहा था कि महान् पुरुषों को भी स्त्री चरित्र को जानना दुष्कर है, वैसा क्यों है ? अथवा मैं कैसे उसे जानूँगा ? अथवा मेरे समान पुरुषों को यह देखना आदि योग्य नहीं है, क्योंकि दुर्जन ही दूसरों के छिद्रों को देखने की इच्छा करते हैं तथा शिष्ट पुरुष उससे विमुख ही रहते हैं । कहा गया है कि-

जैसे ईश्वर ने समुद्र के मंथन से उत्पन्न चंद्र को सिर पर स्थापित किया और सकल लोक का पराभव करनेवाले गरल को कंठ के मध्य में स्थापित किया वैसे ही गुण और दोष को ग्रहण करता हुआ विद्वान् पुरुष सिर से गुण की प्रशंसा करता है और दोष को कंठ में ही स्थापित करता है, कदापि उद्घाटित नहीं करता ।

फिर भी उस श्रेष्ठ विद्वान् के वैसे कहे गये वचन की परीक्षा के लिए मेरे द्वारा यह अवश्य करणीय है । जो कि वैसे विशिष्ट पुरुषों के वचन में असत्यता कदापि नहीं हो सकती, फिर भी मैं इसकी परीक्षा करुँगा, क्योंकि सुने हुए का साक्षात्कार होने पर महान् पुरुषों को भी अधिक प्रामाण्य उत्पन्न होता है ।

इसप्रकार से सोचकर देव के समान शक्तिमान्, नील वस्त्र धारक, अकेला, तीक्ष्ण तलवार हाथ में लीये राजा शय्या को छोड़कर उसकी परीक्षा के लिए गुप्त रीति से सर्वत्र नगर में इधर-उधर पर्यटन करने लगा । किसी स्थान पर क्रीड़ा करती हुई, रूप,

लावण्य आदि गुणों की खान सदृश और अत्यंत चतुर दो कन्याएँ देखी। उस समय दोनों कन्याओं के परस्पर संभाषण आदि सुनने की इच्छा से राजा स्थिरता के साथ खड़ा हुआ, तब उन दोनों कन्याओं में से प्रकृति से सरल एक कन्या ने कहा- हे सखी ! जब मैं विवाहित होकर ससुराल जाऊँगी, तब अत्यंत उत्साह से और निरंतर असीम प्रीति से पति की नित्य सेवा करुँगी। क्योंकि नीतिशास्त्र में कहा है कि-

स्त्रियों को पति की सेवा महाफलदायी, सुखावह और स्वर्ग-अपवर्ग को प्रदान करती है। और पति जिस-जिस गृह कार्य का आदेश करेगा, मैं उस समस्त कार्य को सिर से वहन कर सुख से करुँगी। और हमेशा हृदय में अति उच्च वृत्ति को स्थापित करुँगी। पतिव्रता स्त्री को पति ही देव कहा गया है।

नीतिशास्त्र में प्रतिपादन किया गया है कि-

स्वामी की आज्ञा का प्रतिपालन ही स्त्रियों का अत्यंत श्रेष्ठ धर्म है। कहा भी है-न ही दानों से और न ही सैंकड़ों उपवासों से नारी शुद्ध होती है। व्रत रहित होकर भी भर्तृ के हृदय में स्थित मनवाली नारी शुद्ध होती है। जीवन की अवधि तक अन्ध, कुब्ज अथवा कुष्ठ या व्याधि से पीड़ित भर्त्ता की पूजा करती है, वह महासती है। पुत्र, मित्र और सुंदर माता-पिता को भी छोड़ दें किन्तु जीवित-अवधि जो पति को न छोड़े, वह स्त्री महासती है।

इस प्रकार नीतिशास्त्र के वचन रूपी मन्त्राक्षर के श्रवण से धृष्टता के नष्ट हो जाने से मैं अपने जन्मावधि तक स्व-प्राणनाथ की ही सेवा करुँगी।

यह सुनकर कपट-प्रकृतिवाली उस द्वितीय कन्या ने इसप्रकार कहा- हे सखी ! मैं इस कथन से तुझे मुग्ध जानती हूँ ! यह तेरा वचन तुझमें आलस और जड़ता को व्यक्त कर रहा है। जो स्त्रियाँ

विवेक आदि से विकल और आलस से युक्त होती है, वे ही तेरे समान सतीत्व का आश्रय लेती है। किन्तु मुझ जैसी दक्ष स्त्री मन के अनुकूल कार्य को संपूर्ण करती है। जब मैं विवाहित होकर पति के घर में रहूँगी तब सकल युवक जन के मन मोहक विविध हाव-भाव आदि अनेक चेष्टा से पति को एकान्त आसक्त कर, अपने चातुर्य के योग से अति सुंदर और तरुण दूसरे पुरुषों के साथ भी स्वेच्छा से क्रीडा करुँगी। जैसे विविध रस के आस्वादन की इच्छावाली भ्रमरी एक ही वृक्ष से स्नेह नही करती किन्तु अनेक वृक्षों की सेवा करती हुई निज इच्छा को पूर्ण करती है, वैसे ही मैं भी विविध विषय रस के आस्वादन की इच्छा से अनेक गुणशाली युवा जनों को सेवन करती हुई स्व-यौवन को साफल्य करुँगी। क्योंकि एक ही पुरुष पर प्रीति करने से स्त्रियाँ चातुर्य को प्राप्त नहीं करती, किन्तु अनेक चतुर, अनुरागी, तरुण जनों के साथ मैत्री करने से ही स्त्री चारित्र्य के वैचित्र्य को प्राप्त करती है। युवतियों में उत्पन्न प्रभूत कामाग्नि एक पुरुष से कैसे शांत हो ? शान्ति को प्राप्त नहीं करती, यह रहस्य है। जैसे वन में बढ़ता हुआ दावानल घड़े मात्र पानी के सिंचन से शांत नही होता है, वैसे ही कोई कामशास्त्र में पूर्ण, बलवान् पुरुष भी एक स्त्री से तृप्त नहीं होता है, तो हे सखी ! तूं ही कह, पुरुष की अपेक्षा से अष्ट गुण अधिक काम सारवाली सर्वांग से उत्पन्न काम से युक्त युवति एक पुरुष से कैसे स्व-इच्छा को पूर्ण करती है ? जैसे-

काष्ठों की राशि से अग्नि तृप्त नहीं होती, नदीयों के संयोग से समुद्र और समस्त प्राणियों का नाश करता हुआ यम तृप्त नहीं होता, वैसे ही अनेक पुरुषों के भोग भी से स्त्रियाँ संतुष्ट नहीं होती ।

तारुण्य से परिपूर्ण जो दक्ष स्त्री सतीत्व को धारण करती है, वह केवल गुणवान् युवा पुरुषों की अप्राप्ति से ही है, अन्यथा वह

कदापि उसे धारण न करे । जैसे आश्रय के लाभ वश नदियाँ शीघ्र ही सागर से मिलती है, वैसे ही नारीयाँ भी प्रार्थना करनेवाले के सद्भाव से उससे मिलती ही है । इसलिए हे सखी ! शरीर के मालिन्य को हरण करनेवाले कामी पुरुषों के मन को वश करने के लिए तारुण्य से पुण्यमय सिद्धमन्त्र को प्रास होती हुई मैं तीन-चार चतुर, तरुण पुरुषों का अत्यंत सेवन कर अपने इस तारुण्य को अवन्ध्य करुँगी ।

इस प्रकार दोनों कन्याओं का आलाप सुनकर राजा सोचने लगा कि-अहो ! यह अति आश्चर्य है, दोनों कन्याओं के परस्पर आलाप में विरुद्धाभास दीखायी दे रहा है । अहो ! यह महान् आश्चर्य है कि इन दोनों में एक कन्या अत्यंत श्रेष्ठ दीखायी दे रही है और दूसरी कन्या शाठ्यवाली प्रतीत हो रही है । कैसे शैशवपने में भी इन दोनों कन्याओं में प्रकृति-परिणति भेदवाली दीखायी दे रही है ? अथवा द्राक्ष में नैसर्गिक माधुर्य के समान और तुम्बी की स्वभाविक कटुता के समान, इन दोनों कुमारियों के शिशुपने से ही प्रकृति का वैचित्र्य जाना जाता है । जो कि यह बड़ी कन्या सतीत्व से अत्यंत प्रकृष्ट है, तो भी मेरे इच्छित कार्य के लिए उपयोगिनी यह द्वितीय कन्या ही मेरे द्वारा वरणीय है । क्योंकि किसी पदार्थ के निर्णय को करने की इच्छावाले लोगों को यही सरल उपाय है, लोक में भी स्वर्ण की परीक्षा करने के लिए कसोटी का पत्थर ही समर्थ है, किन्तु उसकी परीक्षा मोती पर नहीं होती । उस कारण से इस कन्या से विवाह कर धीरे-धीरे अपने इच्छित कार्य को साधूँगा ! क्योंकि शीघ्रपने से किया हुआ कार्य भविष्य में आपत्ति का ही कारण होता है । और दूसरी बात यह है कि मेरे द्वारा युक्ति से चारों ओर से अवरुद्ध की गयी यह कन्या स्वेच्छा से कुछ भी आचरण करने के लिए समर्थ नहीं होगी । अवश्य ही तब इसकी दुर्जनता भी चातुर्य के अभिमान

के साथ ही नष्ट हो जायगी। इसप्रकार मन में निश्चय कर, घर की भीत ऊपर चबाये गये ताम्बूल को थूँक कर, अपने को कृतकृत्य मानता हुआ राजा आनन्द सहित घर में आया।

स्वभाव से ही अति अल्प निद्रालु राजा गुण की स्थान ऐसी दिव्य शय्या का क्षण मात्र के लिए सेवन कर, थोड़ा सो कर रात्रि के अंतिम समय में पुनः जाग उठा ! उस समय अपने शत्रु सूर्य के आगमन को जानकर भागते अपने पुत्र अंधकार के पीछे जाने के लिए रात्रि भी उत्सुक हुई। तब अपनी प्रिया रात्रि से होनेवाले वियोग से अधिक खेदित चंद्र भी शीघ्र ही क्लेश को प्राप्त हुआ, नहीं तो वैसे तत्काल ही कैसे तेज रहित हुआ। और अपने स्वामी की दुर्दशा को देखने अथवा दूर करने के लिए प्रभावशाली होते हुए भी ग्रह-गण, लज्जित होते हुए के समान क्षीण तेजवाले बने और शीघ्र ही अदृश्यता को प्राप्त हुए। तब अत्यंत लाल अरुणोदय को देखने से पूर्व के परिचय से आनंदित बनी पूर्व दिशा सुंदर प्रकाश के बहाने से हँसती हुई तथा सन्ध्या के साथ प्रतिस्पर्धा से अत्यंत व्यक्त लाल रंग को वहन करती हुई अत्यंत चमक रही थी। उदित हुए अपने किरण के समूहों से संपूर्ण अंधकार के समूह को नष्ट करनेवाला और समस्त तेजस्वी ग्रहों के प्रभा के अभिमान को कम करता हुआ तब सूर्य उदय पर्वत के शिखर ऊपर माणिक्य के समान शोभित हो रहा था। प्रीतिमान् पति जैसे प्रीति से अपनी पत्नी को कुंकुम आदि लेप से विभूषित करता है, वैसे ही सूर्य भी अपने मृदु किरण के समूह से आकाश और पृथ्वी के अंतराल को विभूषित कर रहा था। उस समय अत्यंत प्रिय सूर्य के किरण के स्पर्श से प्रमुदित बनी कमलिनीयाँ विकसित होने लगी थी। समस्त पक्षियाँ भी मधुर वाणी से सूर्य का स्वागत करने लगी थी और उदय को प्राप्त होने पर अति आदर से

कुशल आदि समाचार पूछने लगी ।

इस ओर सुप्रभात हो जाने पर तेज से अत्यंत जाज्वल्यमान तथा सागर से बाहर आते हुए सूर्य के समान, महल से बाहर आते हुए राजा विक्रम की समस्त लोग स्तुति करने लगे । विधिवत् समस्त प्राभातिक कार्य कर महामहिमाशाली राजा ने जैसे सूर्य आकाश मंडल को अलंकृत करता है, वैसे ही सभा को अलंकृत की । तत् पश्चात् किसी एक सेवक को बुलाकर, उसे इसप्रकार से राजा ने आदेश दिया कि-तुम अब ही वहाँ जाओं और जिसकी दीवार के ऊपर चबाये हुए ताम्बूल की थूँक को देखो, उस घर के स्वामी को ले आओं । अब राजा के द्वारा आदिष्ट वह सेवक तब ही वहाँ आया और श्रेष्ठी को राजा का आदेश कहा । उस श्रेष्ठी को साथ में ही सभा में राजा के समीप ले आया । तब आते हुए श्रेष्ठी को देखकर राजा ने अभ्युत्थान आदि से उसका अत्यंत सन्मान किया । श्रेष्ठी को योग्य आसन पर बिठाकर आदर सहित तथा मधुर वचन से राजा ने इसप्रकार से कहना प्रारंभ किया कि- हे श्रेष्ठी ! तुम्हारी जो पुत्री स्त्री जन के उचित चातुर्य में अत्यंत पटु सुनी जाती है, उसका विवाह मेरे साथ करो । मेरी बहुत पत्नीयाँ है, फिर भी तुम्हारी पुत्री के साथ परिणयन की इच्छा करता हूँ । क्योंकि मोतीयों की माला होते हुए भी क्या गुणवान् पुरुष पुष्पमाला का परिधान नही करता ? राजा के इसप्रकार के कथन को सुनकर श्रेष्ठी ने कहा- हे स्वामी ! मैं सहर्ष आपको पुत्री देता हूँ, क्योंकि आप हमारे स्वामी, न्यायी और विनयी हो, यह संबंध तो विद्यमान है ही, और पुत्री के प्रदान से हम दोनों में अन्य भी घनिष्ठ संबंध बनेगा और इसलिए ही मैं इसे महानन्ददायी और लाभकारी मानता हूँ । हे प्रभु ! आप जिस कन्या की अभिलाषा कर रहे हो, मैं उसे भी समस्त स्त्रियों में उत्तम मानता हूँ और शिव के

द्वारा इष्ट गौरी के समान यह कन्या आपकी समस्त रानीयों में मान्य बनेगी। क्योंकि आप स्वयं ही इसकी इच्छा कर रहे हो । ऐसा कहकर श्रेष्ठी अपने घर पर आया तथा कन्या को महा-मूल्यवान् विभूषण और वस्त्र आदि से सर्वांग से विभूषित कर कन्या को लेकर विक्रमार्क को वैसे समर्पित की जैसे पूर्व में क्षीर समुद्र ने अपनी पुत्री लक्ष्मी, विष्णु को समर्पित की थी । तब नैमित्तिक के द्वारा कहे लग्न में विक्रमार्क राजा ने अलंकार से युक्त उस कन्या को विवाहित की। सुंदर ईंट से निर्मित एक स्तंभवाले महल में उस कन्या को स्थापित की। एक स्तंभ के आधारवाले और अमृत के लेपन से अति कोमल उस भवन में कीट आदि भी ऊपर चढने अथवा प्रवेश करने में समर्थ नही हुए, फिर मनुष्य तो कैसे प्रवेश करने के लिए समर्थ हो ? अत्यन्त अनुराग से युक्त राजा अग्निवेताल के बल से उस भवन में नटराज के समान स्वयं जाने लगा था । समस्त सज्जनों में शिरोमणि विक्रमार्क राजा कल्पवृक्ष के समान अपनी पत्नी को दिव्य और इच्छित विविध भोजन,वस्त्र आदि और उसके योग्य महामूल्यवान् रेशमी वस्त्र और दिव्य आभूषणों को देने लगा, अधिक कहने से क्या प्रयोजन है ? जिस-जिस सामग्री की इच्छा करती थी, राजा उस समस्त सामग्री को उसे वितरण करता था ।

अब उस अति सुंदर महल में नूतन विवाहित वह कन्या मन में इसप्रकार विचारने लगी- अहो ! अकारण ही यह राजा शत्रु के समान जैसे पिंजरे में सारिका को डालते है, वैसे ही मुझे कारागृह के समान इस महल में स्थापित किया है । अथवा यह राजा बल से भी मुझे अन्य लोगों के द्वारा प्रवेश करने के लिए अशक्य ऐसे महल में रोक कर सतीत्व पालन की इच्छा कर रहा है । क्योंकि इसके अंतःपुर में अन्य भी स्त्रियाँ हैं और उनको इसप्रकार से ऐसे भवन में कभी-भी

नही स्थापित करता है ।

हाँ ! इसका यह कारण हो सकता है कि जिस रात्रि में मैं चिर समय तक सखी के साथ आलाप कर रही थी, तब अदृश्य गुप्त चर्या से पर्यटन करते इसने वह समस्त सुना था । इसलिए ही उसके प्रतीकार को करने की इच्छावाला यह राजा विचारवंतों में अग्रेसर होता हुआ दाक्षिण्य शिरोमणि ऐसी मेरा आश्रय लेकर स्त्री जन चारित्र्य को जानने की इच्छा से ही मेरे साथ पाणिग्रहण किया था । उस हेतु से ही मैं यह अनुमान करती हूँ कि- यह राजेन्द्र तीव्र भाववाली, अति कामुकी और चातुर्य में कुशल मुझसे विवाह कर, कोश में तलवार के समान मेरे रक्षण के लिए ही ऐसे अवरुद्ध महल में स्थापित किया है । यह तो दूर रहो, यदि यह राजा इस प्रकार जानता है, तो जानें । परन्तु वस्तु स्वभाव को नहीं जानता हुआ यह राजा यदि ऐसी इच्छा से इस प्रकार का उद्यम करता है, फिर भी कदाचिद भी मेरे रक्षण में समर्थ नहीं हो सकता । अब भी कुछ भी नहीं गया है, अब इस असार विचार से पर्याप्त हुआ । अब जो श्रेयस्कर है, वह ही मेरे द्वारा चिन्तनीय है अथवा मैं अवश्य ही विचारित कार्य को आगे करुँगी, इस प्रकार मन में निश्चय कर अपने कार्य को साधने की इच्छा से काल की अपेक्षा करती हुई और अत्यंत प्रयत्न करती हुई कपट रूपी पानी से भरी हुई वापी के समान वह नूतन विवाहित कन्या अपने असीम चातुर्य कला से बाहर से राजा के ऊपर प्रीति को प्रकट करती हुई और अंदर कपट को धारण करती हुई, अत्यंत चतुर राजा के मनोरंजन के लिए मनोहर वचनों को कहती हुई सरस वचन की वारि धारा से बरसने लगी ।

इस प्रकार से अपने स्वभाव को प्रकट करती, दक्ष भी राजा उसके कपट-प्रेम से मुग्ध होकर उसे सरल प्रकृतिवाली ही मान रहा

था । और पूर्व में परिचित उसकी दक्षता को सर्वथा विस्मरित ही हुआ था । स्वामी के आनुकूल्य को धारण करना ही स्त्रियों का अत्यंत बड़ा रस है, इस प्रकार हृदय में निश्चय को धारण करती और राजा से प्रेरित नहीं होती हुई भी राजा के चित्त के अनुकूल आचरण से उसके मन को आनंदित करती थी । उसके निःसीम अनुकूल वृत्ति से रंजित बना हुआ राजा अनुकूल होकर ही उसका सेवन करता था, क्योंकि सकल लोक को वश करने के लिए मंत्र बिना ही अनुकूल आचरण रूप कार्मण को युवति-जन धारण करती है ।

एक दिन वह नूतन विवाहित कन्या राजा से इस प्रकार से कहने लगी- हे स्वामी ! मैं इस भवन में परीवार से हीन और शरीर मात्र सहायवाली, अकेली कैसे दिवसों को व्यतीत करुँ ? आप भी तीन-चार दिन के बाद मेरे समीप में आते हो, मैं उस दिन को ही गिनती हूँ और क्षण भर के लिए मैं उस रात्रि को भी जानती हूँ । जिस रात्रि में आपके अंग के संग को प्राप्त नहीं करती हूँ, संवत्सर तुल्य वह रात्रि प्रतीत होती है । इसलिए प्राण तुल्य आप से वियोगी बनी हुई जैसे सुखपूर्वक दिवसों को व्यतीत करुँ, वैसे मेरे ऊपर कृपा कर आचरण करे । आप मुझे लेखन की सामग्री, लेखिनी और मसी-पात्र आदि दे, जिससे आपके विरह से खेदित होती हुई भी मैं उस कार्य को करती हुई काल को व्यतीत करुँ । इसके लिए किसी कवि ने कहा है कि-

पति-वियोग से पीड़ित और लेखन, पठन आदि सद् योग से रहित नारी एक दिन को भी कल्प के समान मानती है, जब वह ही नारी भर्त्ता के अंक में होती है तो वर्ष को भी दिन के समान मानती है ।

इस प्रकार नूतन विवाहित कन्या से प्रार्थना कीये गये राजा ने

उसे लेखन आदि संपूर्ण सामग्री दी । वह कन्या भी अंतर के राग बिना ही बाह्य राग से राजा को आह्लादित करती हुई अत्यंत आनंदित हुई थी। इस प्रकार राजा उस चतुर स्त्री को सर्व इच्छित प्रदान से संतुष्ट करता था । उसके ईंगितों को जानने में दक्ष वह कन्या भी बाह्य उपचारों से उसे आनंदित करती थी ।

लोक में प्रसिद्ध श्री सौधर्म बृहत्तप नामक निर्मल गच्छ के स्वामी तथा जगत्-जयी श्री राजेन्द्रसूरि के दोनों चरण कमलों में सदा आनंद से यतीन्द्रमुनि के द्वारा रचित इस गद्य प्रबन्ध चंपकमाला के चरित्र में यह आद्य प्रस्ताव संपन्न हुआ ।

द्वितीय प्रस्ताव :-

अब एक दिन किसी प्रस्ताव में उस नगर में रूप से काम सदृश और लक्ष्मी से कुबेर को जीतनेवाला कोई गगनधूलि नामक सार्थवाह आया था । और उसने प्रशस्त, महा मूल्यवान् वस्तुओं को एक थाल में भर कर राजा को भेंट दी । इस उपहार से राजा ने लक्ष्मी के कोश के स्वामी तुल्य उस पर कृपा की और व्यापार के लिए लायी गयी वस्तु समूह का शुल्क मोचन किया । राजा ने निवास के लिए इसे एक उत्तम महल दिया । सार्थवाह उस महल में सुखपूर्वक रहा ।

एक दिन अपने महल के अत्यंत निकट मार्ग से शिबिका में बैठकर राजसभा में जाते हुए उसे गवाक्ष में बैठी हुई उस नूतन विवाहित रानी ने देखा । सार्थवाह को देखकर वह अपने हृदय में विचारने लगी कि- अहो ! यह पुरुष राज-सम्मान से युक्त है और पूर्ण चन्द्र के समान मेरे दोनों नेत्र रूपी चकोर को तृप्त कर रहा है तथा

श्वेत कुमुद के समान मेरे मन को भी अत्यंत उल्लासित कर रहा है। और इसका वर्ण भी स्त्रियों के मान को दूर करने के लिए दक्षिण, अतीव सुंदर और वर्णनीय दीखाई दे रहा है । इसका सौभाग्य भी लोकोत्तर जान पड़ता है । ऐसा जान पड़ता है कि इस पुरुष का अद्वितीय रूप चित्त को हरण कर रहा है । फिर कैसे न यह पुरुष समस्त स्त्रियों के मन में अद्भुत चमत्कार को उत्पन्न न कर सके ? मैं दोनों नेत्रों को भी सफल मान रही हूँ जो आज दूसरों से दुष्प्राप्य, काम सदृश और सौन्दर्य के सागर तुल्य इसे देख लिया है । और अधिक क्या कहे, जिस युवति ने सौभाग्य शिरोमणि इस पुरुष को नहीं देखा है, मैं मानती हूँ कि उसका जन्म व्यर्थ ही गया है । जिस युवति ने इसे देखकर भी गाढ़ आलिंगन नहीं किया है, उसका जन्म ही विफल हुआ है । हे विधि ! इसलिए मुझे शीघ्र ही तूं पाँखवाली बना जिससे मैं शीघ्र ही उड़कर कमल समान इस पुरुष के गोद में बैठुं । रे चित्त! तूं प्रसन्न बन और धैर्य को धारण कर, दोनों भुजाओं को प्रसार करनेवाली विद्या अर्पण कर, जिससे दोनों बाहु को प्रसारित कर शीघ्र ही अपने मनोरथ कीये गये इस पुरुष का आलिंगन कर मैं सुखिनी बनूँ। जिस प्रकार से इसके दर्शन से दोनों नेत्र साफल्यमय बने है, वैसे इसके अंग के स्पर्श से भी मेरा अंग कब सफल बनेगा ? इस प्रकार से विचार करती हुई और उसी पुरुष को एकाग्र मन से देखती हुई वह रानी, उसके अलक्ष्यता को प्रास हो जाने पर भी, जिस मार्ग से वह गया था उस मार्ग को ही विलक्ष भाव से देखने लगी । पुनः क्षणान्तर में ही सावधान हृदयवाली बनी वह मन में इस प्रकार से सोचने लगी कि– मैं इस पुरुष के योग के बिना क्षण भी जीवित रहने के लिए समर्थ नहीं हूँ, इसीलिए मेरे जीवन का आधार बना इस पुरुष का गाढ़ आलिंगन मैं जैसे प्रास करुँ वैसे मेरे द्वारा प्रयत्न करना चाहिए । क्योंकि

स्व-प्राणों को धारण करने के लिए जो आलस्य करता है अथवा विलंब करता है, अन्त में वह महाकष्ट को प्राप्त करता है इसलिए इस विषय को साधने में विलंब करना मुझे अनर्थकारी ही हो सकता है। इस प्रकार विचारकर उस तरुणी ने उस धनवंत सार्थवाह को स्व-अभिप्राय ज्ञात करने के लिए निर्लज्ज और भय रहित होकर एक पत्र में इस श्लोक युगल को लिखा--

हे नाथ ! रात्रि से संरुद्ध बनी संचारवाली, कमल रूपी घर में प्राप्त हुई और चिन्ता से व्याप्त हुई भ्रमरी हे सूर्य ! तेरे आगमन की इच्छा कर रही है । पक्षान्तर यह है कि- कोई स्त्री पुरुषान्तर से कह रही है कि- हे नाथ ! जैसे रात्रि में संचालन रहित, कमल रूपी घर को प्राप्त बनी और चिन्ता से आकुलित बनी भ्रमरी अपने श्रेय के लिए सूर्य की इच्छा करती है, वैसे ही मैं भी घर में अवरुद्ध की गयी, अति मदन की अग्नि से दग्ध की गयी संपूर्ण शरीरवाली, तुझको ही चाहती हूँ।

हे सूर्य ! उसके अभाग्य से यदि आप उसकी उपेक्षा करोगे, तो अवश्य ही हताश बनी वह भ्रमरी मरण प्राप्त करेगी । अन्य तात्पर्य मेरे अभाग्य के योग से मेरी उपेक्षा कर जो तुम नहीं आओगे, तो नष्ट आशावाली बनी मैं शीघ्र ही मरण को प्राप्त होऊँगी, वहाँ लेश मात्र भी आप संशय न करे । इस तरह जानकर और मेरे ऊपर कृपा कर आप अवश्य ही यहाँ आओं ।

पश्चात् इस पत्ते को पान के बीड़े के अंदर रखकर गवाक्ष में बैठी हुई वह रानी उसके आगमन की कांक्षा करती हुई, पश्चात् वहाँ आये सार्थवाह के गोद में अंदर स्थापित पत्तेवाली उस पान के बीड़े को डाला । तब आकाश से गिरे हुए उस पान के बीड़े को देखकर, क्या कोई देवता ने इसे डाला है ? इस प्रकार की बुद्धि से सार्थवाह ने अपनी दृष्टि ऊपर की । उस अवसर पर नीचे देखती हुई और गवाक्ष

में बैठी उसे देखकर, उसके रूप, लावण्य और तारुण्य के अवलोकन से प्रमत्त बना हुआ बड़े मेष के समान लज्जा रहित बना वह निमेष से रहित दृष्टि से उसे देखने लगा, जिससे कि ऐसे कामियों को लोक-लज्जा अथवा राजा का भय कैसे हो सकता है ? उस रानी को ही देखता हुआ वह सार्थवाह इस प्रकार से मन में सोचने लगा कि- स्निग्ध दृष्टि से यह रानी मुझको ही देखती हुई मन के राग को दिखा रही है, क्योंकि अंदर के राग बिना कोई भी स्त्री इस प्रकार से किसी को नही देखती । मैं मानता हूँ कि इसने साक्षात् मूर्त्तिमंत प्रीति के समान इस पान के बीड़े को मुझे अर्पित किया है । इसलिए ही इसके अंदर क्या है ? मेरे द्वारा इस पान के बीड़े को खोलकर अच्छी तरह से देखना चाहिए । क्योंकि रागी-जन द्वारा अर्पित साधारण भी बहुमान योग्य होता है ।

इस प्रकार विचारकर पान के बीड़े को खोलकर उसके अंदर रहे मूर्त्तिमंत काम के आदेश के समान सुंदर पत्र के ऊपर कर-कमलों से अंकित दोनों श्लोकों को सार्थवाह ने देखा । उसके मानसिक राग रूप निधि के बीज तुल्य उन दोनों श्लोकों को पढ़कर, उसके मन के आशय को जानता हुआ सार्थवाह उससे मिलने को अति उत्सुकता धारण करने लगा । वह मन में इस प्रकार सोचने लगा कि- अहो ! रति के भी रूप के संपूर्ण गर्व को अपहरण करनेवाला इसका रूप अति आश्चर्यजनक है । इसका लावण्य भी लोकोत्तर है । वैसे ही इसका अद्भुत नैपुण्य असाधारण ही लग रहा है । और यह कोई अकथ्य राग ही मुझ पर धारण कर रही है । इसकी अन्योक्ति, लेखन और कथन कौशल्य भी अलौकिक ही है ।

इस प्रकार उस रानी से आलिंगन करने के लिए और यथेच्छा देखने के लिए उत्सुक बना हुआ सार्थवाह उस पर अत्यंत अनुराग

धारण करते हुए सोचने लगा कि-यह मुझ पर अनुरागिणी है इसलिए ही उसका उपेक्षण मुझे उचित नही लगता । यदि उपेक्षा की जाय तो काम के बाण समूह से परिपीड़ित अंगवाली और हताश हुई यह रानी यदि मरण प्राप्त करेगी, तब मुझे ही उसकी हत्या लगेगी, इसलिए मेरे द्वारा जिस किसी भी उपाय से उसके समीप में जाना चाहिए । वहाँ जाकर जो उचित होगा वह करुँगा, इस प्रकार विचार करते हुए वह अपने महल में आया ।

महल में किसी एक मतिमंत और प्रेमपात्र मित्र से यह समस्त ही वृतांत इस प्रकार से कहने लगा कि- हे मित्र ! यह कार्य अति दुःखसाध्य है । क्योंकि एक स्तंभवाले महल में रुकी हुई उस रानी का संयोग सुलभ नहीं है किन्तु अतीव दुष्कर ही है । यदि मैं वहाँ नहीं जाऊँगा तो काम के बाणों से परवश बनी हुई वह रानी अवश्य ही मरण प्राप्त करेगी, इसलिए अब मुझे क्या करना चाहिए ? एक ओर विषम नदी और दूसरी ओर सिंह इसप्रकार का न्याय मुझे उपस्थित हुआ है । अथवा मैं मानता हूँ कि आपकी सहायता से दुष्कर भी कार्य को शीघ्र ही सुलभता से सिद्ध करुँगा । जैसे कि पूर्व में अंतःपुर के रक्षक द्वारपाल के प्रभाव से कौलिक ने भी राज-कन्या का सेवन किया था और धूलि का कण भी वायु के संयोग से पर्वत के भी शिखर पर चढ़ जाता है । दूसरों की सहायता से असाध्य कार्य भी सुलभ बन जाता है । जैसे कि-मणि एक पद भी चलने में समर्थ नही होता, फिर भी दूसरों की सहायता से अगम्य को भी प्राप्त करता है । वैसे ही यह कार्य दुष्कर होते हुए भी, मतिमंतों में अग्रेसर आपकी सहायता से शीघ्र ही सिद्ध करुँगा ।

इस प्रकार सार्थवाह के द्वारा कहे गये वचन को सुनकर उसके दुःख से खेदित होते हुए मित्र ने इस प्रकार कहा कि- हे मित्र ! कोई

अवज्ञा किया गया मनुष्य जैसे बोलता है, वैसे ही तुमने यह वचन खेद सहित कहा है । और यह कार्य वृद्धों की सेवा करते हुए मुझे असाध्य अथवा कष्ट-साध्य नहीं है । एक बार पूर्व में मेरे द्वारा वृद्ध के मुख से सुना था कि- चंदनगोधा अत्यंत बलवान् होती है और यह शीघ्र ही बिना प्रयत्न के अगम्य आरोहणवाले महल पर चढ़ जाती है । इसलिए शीघ्र ही वह चंदनगोधा कही से लायी जाय। जिससे कि जल से वियोगी बने मछली के समान उस स्त्री से वियोगी और अति दुःखी तुझको शीघ्र ही उसके समीप में ले जायगी । जैसे वायु से प्रेरित अग्नि शीघ्र ही वन को जलाती है, वैसे ही हे मित्र ! तेरे प्रेम से प्रेरित बना मैं भी यह समस्त भी बिना प्रयत्न के सिद्ध करुँगा। मैं अब ही आपकी इस चिन्ता का अपहरण करता हूँ क्योंकि बलवान् और मतिमंत पुरुष को भी उत्पन्न हुई यह चिन्ता चिता के समान अत्यंत दहन करती है । कहा भी है-

चिता और चिन्ता दोनों के मिलने पर, अधिक क्लेश देने से चिन्ता ही अत्यंत बड़ी है । चिता तो निर्जीव अर्थात् मृत को ही जलाती है, किन्तु चिन्ता तो सजीव प्राणी को जलाती है ।

इस प्रकार उस सार्थवाह को आश्वासित कर और स्वयं तभी किसी गाँव में जाकर पूर्व परिचित चोर के पास से सुशिक्षित चंदनगोधा को लेकर और किसी कलश में रखकर, एक-एक हाथ के ऊपर गाँठवाली, अत्यंत बड़ी और दृढ रस्सी को लेकर उसी रात्रि में सार्थवाह के साथ एक स्तंभवाले भवन के समीप में आया । और वहाँ आकर घड़े से चन्दनगोधा को बाहर निकालकर उसकी कमर के ऊपर रस्सी को बांधकर तथा बांस के डंडे के ऊपर चढ़ाकर उसे ऊँचा फेंका । तत्क्षण ही वह चंदनगोधा भी चढ़ती हुई उस महल के गवाक्ष में अत्यंत गाढ़ रीति से आलिंगन कर स्थित हुई । तत्पश्चात्

उस मित्र के द्वारा प्रेरित किया गया वह सार्थवाह दोनों हाथों से रस्सी को ग्रहण कर और रस्सी के मध्य भाग में स्थित गाँठों में पैर के अंगुठे और अंगुलियों को स्थापित कर बांस के ऊपर महान् नट के समान दुरारोह भी उस एक स्तंभवाले महल के ऊपर चढ़कर गवाक्ष में निर्भय होकर स्थित हुआ । उसके बाद उसके मित्र ने फूत्कार के संकेत से उस चंदनगोधा को नीचे लाकर और घड़े में स्थापित कर वही किसी गुप्त स्थान में रहा ।

उस अवसर पर बड़े दीपक के द्वारा भवन को प्रद्योतित कीये जाने पर, उसे अकेली देखकर उसके मन में प्रवेश करते हुए के समान उसने अंदर प्रवेश किया । पूर्व में देखे हुए होने से वह रानी भी मन में अत्यंत हर्ष को धारण करती हुई और पुलकित से युक्त शरीरवाली होती हुई तत्काल ही उठकर और उसके संमुख आकर कमल के पत्तों से उसकी पूजा करती हुई के समान अधिक कटाक्ष करती हुई और विकसित मुखवाली बनी वह रानी उससे इस प्रकार से पूछने लगी कि- हे प्राणप्रिय ! आपका स्वागत है, मैं आपके आगमन की ही कांक्षा कर रही थी । आप आओ और निद्रा करने के लिए इस शय्या पर बैठो, मन के संकल्प-विकल्प को छोड़े, शीघ्र ही इस शय्या को पवित्र करो और चिरकालीन इस प्रेम रूपी वृक्ष को सफल करो । उसके पश्चात् उस शय्या पर बैठे सार्थवाह से वह रानी अमृत से भी अधिक मधुर वाणी से कहने लगी कि- हे प्राणेश्वर ! जिस दिन मैंने आपको इस मार्ग से जाते हुए देखा था, तभी काम ने मुझे अधिक बाधित किया और उस बाधा को आप अकथनीय ही जाने । मदन के बाण समूह से संपूर्ण शरीर में विंधी हुई मैं आपकी ही इच्छा करती हुई नहीं सो पाई हूँ, न ही खाती हूँ अथवा पीती हूँ, किन्तु आपकी समागम रूपी अमृत पिपासा ही अत्यंत बढ़ रही है ।

और इस कारण से ही मन में मेरा स्मरण कर अब आप इधर आये हो, वह सुंदर किया है । जो कि यह भवन राजभय का स्थान है और दुरारोह भी है, फिर भी वह समस्त ही छोड़कर और कृपा कर जो आप यहाँ आये हो, वह अतीव श्रेयस्कर हुआ है । जैसे आपने यहाँ आकर मेरी प्रार्थना सफल की है, वैसे ही आप अब मुझको अत्यंत गाढ़ से आलिंगन कर मेरे यौवन को सफल करे ।

तत्पश्चात् सार्थवाह ने रानी से इस प्रकार से कहा कि-- हे सुंदरी ! उस दिन पान के बीड़े में स्थापित दोनों श्लोकों के अभिप्राय को जानकर और तेरी चिन्ता को दूर करने के लिए तेरे समीप में आया हूँ । परन्तु तेरे साथ अब विषय क्रीड़ा करने के लिए यहाँ नहीं आया हूँ । जिससे कि धर्म-शास्त्र के नैतिक वचनों को स्मरण करते हुए पुरुष के द्वारा कभी-भी पर स्त्री उपभोग नहीं की जाती और तूं राज-पत्नी हो तो मेरे द्वारा कैसे उपभोग की जा सकती है ? यदि शिष्ट-पुरुष परलोक के विरुद्ध विषय में प्रवर्तन नहीं करते है तो तुम्हारे द्वारा प्रार्थना कीये गये दोनों लोक के विरुद्ध कार्य में मैं कैसे प्रवर्त्तन करुँ? जो कि आपके कथन से और अनुराग से, अदृश्यपने के कारण से मैं परलोक के भय को नही गिनूँ परन्तु यह लौकिक राजभय प्रत्यक्ष दीखायी दे रहा है, मैं उसका कैसे तिरस्कार करुँ ? जिससे कि राजा के द्वारा अन्याय करने वाले महान् पुरुष भी बाधित कीये जाते है, वैसे न्याय में निष्ठ वह राजा कैसे स्व-पत्नी का उपभोग करनेवाले पुरुष को न मारे ? अर्थात् मारेगा ही । महान् पुरुष भी मित्रादि के ऐसे दोष को फणीन्द्र के समान कदाचिद् भी नहीं सहन करते है, कदाचिद् सज्जन पुरुष मित्र के अपराध को क्षमा भी करे, किन्तु राजा और सर्प किसी के भी अपराध को सहन नहीं करते है और शीघ्र ही उसके उचित दंड को करते ही है । इसलिए अकाल मृत्यु के कारणभूत तुम्हारे

संभोग को मेरा मन कैसे इच्छा करे ? क्या अज्ञान भी बालक खाने के परिणाम रूपी फल को नहीं जानते हुए किंपाक फल को खाते हैं ? नहीं खाते हैं । इसलिए हे सुंदरी ! मैं सादर तुझसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे वापिस लौटने की अनुज्ञा दो जिससे कि इस प्रेम-पाश से मुक्त बना मैं सुखपूर्वक जीवित रह सकूँ । जो कि- तब तक ही सुख है, जब तक कोई प्रिय नहीं किया जाता है और प्रिय के करने पर तत्काल ही यह आत्मा दुःखों में गिराया जाता है । अर्थात् अन्य पुरुष के ऊपर प्रीति करते पुरुष के द्वारा अत्यंत दृढ़ रस्सी से बाँधे हुए पशु के समान केवल दुःख ही भोगा जाता है ।

इस प्रकार सार्थवाह का कहा सुनकर रानी ने कहा- हे प्रियतम ! तुम मेरे दुःख को कम करने की इच्छा से यहाँ आये हो, तो क्यों नहीं विद्युत् के समान सफेद वर्णवाली, तारुण्य से परिपूर्ण, विद्युत्-लता के समान अत्यंत देदीप्यमान, काम के बाण समूह से अत्यंत पीड़ित, अति विह्वल, दुःखित और अकेली मुझको भजते हो, मुझे ग़ाढ़ आलिंगन कर सुखी करो और अत्यधिक विलंब न करो, क्योंकि जब तक तुम मेरे साथ क्रीड़ा नहीं करोगे, तब तक मैं स्वास्थ्य प्रास नहीं करुँगी, इसे तुम सत्य जानो । जैसे कि- यथेच्छा से पानी पीकर ही तृषा से आकुलित मनुष्य, तृषा को शांत करता है, और भूखा मनुष्य भी खाकर ही स्वस्थ होता है, अन्यथा नहीं, वैसे ही तेरे द्वारा उपभोग की गयी ही मैं स्वस्थ हो सकती हूँ, अन्यथा मैं प्राणों से रहित बन जाऊँगी । मनुष्य स्वास्थ्य होने पर ही नीतिवाक्यों का चिन्तन कर सकता है और पंडितों के वचन पर श्रद्धा करता है । किन्तु विपरीत होने पर निषेध कीये गये का भी आचरण करता है, नहीं बोलने योग्य को भी कहता है तथा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को भी नहीं जान पाता है । जो कि कहा भी है -

आपत्ति काल के उपस्थित होने पर मनुष्य यदि किसी उपाय से विद्यमान क्रिया को रक्षण करने में समर्थ न हो तो निषिद्ध का भी आचरण करे, जैसे कि- वर्षाकाल में वृष्टि की अधिकता से यदि राज-मार्ग फिसलाव बन जाय, तो कोई वक्त उपाय रहितपने से पंडितों के द्वारा अपथ से भी गमन किया जाता है ।

इसलिए हम दोनों का भी निरुपायपने से निषिद्ध आचरण दूषण नहीं है किन्तु भूषण ही है, यही तत्त्व है । और भी यह है कि-

सज्जनों के द्वारा शरीर के स्वस्थ होते औषध निषिद्ध की गयी है, किन्तु विपरीत होने पर उनके द्वारा ही वह औषध भी सेवन की जाती है ।

दूसरी बात यह है कि शास्त्र में भी सर्वत्र उत्सर्ग-अपवाद मार्ग दोनों ही दीखाये गये हैं । इस हेतु से हे सार्थवाह ! इस प्रस्तुत विषय में तेरे द्वारा भी अपवाद मार्ग ही आलंबन किया जाय और वैसे होने पर कोई भी क्षति नहीं है ।

इससे ज्यादा और भी यह बात है कि जो पुरुष कामुकी, काम से पीड़ित, प्रीति से बार-बार क्रीड़ा के लिए प्रार्थना करती हुई और स्वयं ही समीप में आयी युवति की उपेक्षा करता है और उसके साथ क्रीड़ा नहीं करता है, वह पुरुष अत्यंत पापी होता है और उसके मुख अवलोकन से भी लोगों को पाप लगता है । वह चांडालपने को ही प्राप्त करता है । इत्यादि विविध इतिहास-स्मृति-नीति वाक्यों को जानते हुए तुम कैसे मुझे ठग रहे हो कि परदारा-गमन नहीं करना चाहिए । हे सार्थवाह ! अति-प्रिय ऐसे आपने जो कहा है कि परलोक-पीड़ा के भय से ऐसे कार्य का मैं अनुष्ठान नहीं करुँगा, इसे भी मैं सुंदर नहीं देख रही हूँ, क्योंकि परलोक के क्लेश की अपेक्षा से मैं आपके वियोग से उत्पन्न दुःख को ही असह्य मान रही हूँ । जो कि

परलौकिक दुःख अदृश्य और अत्यंत अल्प है तथा इससे भी आपके विरह से उत्पन्न दुःख अत्यंत बड़ा और असहनीय है, यह मैं सत्य कह रही हूँ। जो भवान्तर में होगा, उसे मैं सुख से सहन करुँगी, परन्तु मैं अब आपके विरह को कैसे भी सहन करने के लिए समर्थ नहीं हूँ। हे प्राणेश ! प्रथम तो परलोक ही संदिग्ध है, तो वहाँ उत्पन्न होते दुःख का कौन मतिमान् श्रद्धा करे ? इस प्रकार परलोक के संदिग्ध होने पर वहाँ उत्पन्न होती यातना को भी संदिग्ध ही जाने। इसलिए परलोक के क्लेश की शंका के भय से कौन मतिमान् पुरुष इसलोक के प्रत्यक्ष ऐसे सुख को छोड़े ? कोई भी नही, यह तात्पर्य है।

आपने यह भी कहा था कि प्रत्यक्ष यहाँ इहलोक संबंधी राजकीय भय है, और वह तो हम दोनों को समान ही है। जब हमारे ऐसे अन्याय कार्य को राजा जानेगा, तब हम दोनों को मार देगा, किन्तु अकेले आपको नहीं। मैं जानती हूँ कि आप का मुझ पर अत्यंत अल्प राग है और मन में राजा के भय को धारण करते हो, किन्तु मैं आप पर अत्यंत अनुरागिनी हूँ, इसलिए लेश मात्र भी उस भय को नहीं गिनती हूँ। और जो पुरुष भय आदि से विह्वलता को प्राप्त करता है, वह पुरुष ही आत्म-रक्षण के लिए निकटवर्ती सज्जन के भी सुस्नेह को छोड़ देता है और जो पुरुष शौर्यशाली और विक्रमी होता है, वह सज्जन पुरुष से की हुई स्नेह की वृद्धि के लिए अपने प्राणों को भी तृण के समान मानता है। कहा भी गया है कि-

हे खंजन पक्षी जैसी सुंदर नेत्रोंवाली ! यदि आपके लिए मेरा सिर जाता हो तो जाय। रावण ने भी सीता के लिए दस भी मस्तकों का नाश प्राप्त किया था। तुम्हारे कारण से मेरे सिर के नाश में क्या आश्चर्य है ? उससे मैं लेश भी खेदित नही होता हूँ।

प्राणियों को जो कि लोकान्तर में भी प्राण दुर्लभ कहे गये हैं,

परंतु उनसे भी सज्जन के साथ मैत्री सर्वथा ही दुर्लभ कही गयी है। इसलिए अपने प्राणों के रक्षण के लिए कौन मतिमान् पुरुष सज्जन के प्रेम को छोड़े ? कोई भी नही, यह रहस्य है। कदाचिद् भी राजा हम दोनों के इस कार्य को जानने में समर्थ नहीं हो सकता है, जो जान भी ले तो भी कदाचित् क्षमा भी करे। परन्तु भक्षण करने के लिए उद्यत यह काम हताश बनी मुझे अब ही जला दे अर्थात् मरण प्राप्त कराये तब मैं क्या करुँगी ? इसलिए हे पुण्यशाली ! व्यापारी जातीय में स्वाभाविक भय को छोड़ दो, शीघ्र ही काम से आतुर मेरा अत्यंत मर्दन करो, मेरे दुःख को दूर करो और मुझ पर करुणा करो।

रानी के ऐसे वचन सुनकर सार्थवाह ने कहा कि– हे सुंदरी ! लोक में स्त्रियों के द्वारा किया गया प्रेम, पर्वत के ऊपर से निकलते हुए जल के प्रवाह से भी चपल होता है। क्योंकि स्त्रियाँ क्षण भर के लिए अनुरागिनी होती हुई भी, क्षण भर में ही विमुख होती हुई अत्यंत बड़े अनर्थ को ही उत्पन्न करती है। तथा रागी बनी वे केवल द्रव्य का ही अपहरण करती है, विरागी बनी वे प्राणों का भी घात करती है। इस प्रकार होने पर कौन मतिमान् उनके लिए ऐसे प्राण–अपहारी कार्य को करे। कोई भी नहीं करता, इसका यह तात्पर्य है। यह लोकोक्ति सत्य है कि–

किसी के द्वारा भी स्त्रियों का चरित्र नहीं जाना जा सकता। तथा सभी पुरुष भी गाढ़ स्नेहवाले नहीं होते क्योंकि एक जातीयवालों में भी प्रत्यक्ष ही सांसर्गिक अन्तर दीखाई देता है। और जो यह स्त्री है वह अन्य पुरुष को ही आलिंगन करती है। मधुर वचन के द्वारा अन्य से क्रीड़ा करती है और अन्य ही पुरुष को देखती है, अन्य के हेतु से रोती है, शपथों के द्वारा अन्य से वचन कहती है, अन्य को स्वीकार करती है और अन्य के साथ सोती है, शयन को प्राप्त होती हुई अन्य–

अन्य का ही ध्यान करती है । लोक में प्रसिद्ध और सभी के द्वारा आदरित की गयी यह वामा स्त्री किस धृष्ट पुरुष के द्वारा सर्जित की गयी है, यह हम नहीं जानते है ।

सार्थवाह के ऐसे वचन सुनकर रानी कहने लगी- हे सज्जन! जो कि आपकी उक्ति अत्यंत श्रेष्ठ है, फिर भी सभी स्त्रियाँ एकाकारवाली नहीं होती हैं अथवा सभी पुरुष भी समान नहीं होते हैं । कितने ही पुरुष वज्र के समान अत्यंत कठोर हृदयवाले देखे जाते हैं और वे अपराध के बिना ही स्व प्राण-प्रिया के प्राणों का अपहरण करनेवाले होते हैं । कितनी ही स्त्रियाँ भी स्व प्राण-प्रिय के वियोग को सहन करने में असमर्थ हुई सतीयाँ बनती है । क्योंकि जगत् में कितनी ही स्त्रियाँ जाज्वल्यमान महाज्वालावाली चिता में गिरकर स्व को भस्मसात् करनेवाली देखी जाती है । इसलिए वैसी सभी स्त्रियाँ प्रेम से युक्त होती है । जैसे कि- घोड़े, हाथी और लोह में तथा काष्ठ, पाषाण और वस्त्रों का और नारी, पुरुष और पानी में बड़ा अंतर होता है । इसलिए संकल्प-विकल्प आदि को छोड़कर मेरी प्रार्थना को सफल करे । हे कान्त ! मैं कितना कहूँ, मेरा जीवन आपके आधीन है । काम से पीड़ित, अनाथ और अतिदीन मुझे भजो और देरी मत करो । इसप्रकार उस रानी के प्रेम रूपी अमृत से भरे वचन को सुनकर सार्थवाह का मन भी उस पर अनुरागी बना । क्योंकि स्त्रियाँ लीला से ही नीरस और अति कठोर पुरुष के भी मन को भेदती है, तो जो सरस और कामशास्त्र के जानकार होते है, उनके मन को भेदने में कौन-सा आश्चर्य है ? उसके पश्चात् शिष्ट-जनों की पद्धति को छोड़कर और विवेक आदि समुज्ज्वल गुणों को हृदय से छोड़नेवाले उस सार्थवाह ने उस रानी को सादर अपने क्रोड स्थान पर बैठाया ।

कहा भी है कि-

तब तक ही ज्ञान रूपी सूर्य जीव रूपी आकाश में देदीप्यमान होता है कि जब तक स्त्री रूपी मेघ-माला उसे राग रूपी मेघों से न आच्छादित करे ! अर्थात् स्त्री रूपी मेघ की माला से प्रेम लक्षणवाले बादलों से आच्छादित बना ज्ञान रूपी सूर्य तिरोहीत होकर अदृश्यता को प्राप्त करता है ।

और यह भी है कि-

जब तक हृदय रूपी भवन में उग्र ऐसा रमणी-राग रूपी राक्षस नहीं आता है, तब तक ही उसमें विनय आदि गुण रूपी बालक क्रीड़ा करते है । अर्थात् स्त्री-राग रूपी राक्षस के प्रकट होने पर, उसे देखने से विवेक आदि गुण रूपी बालक लोगों के चित्त में से तत्काल ही पलायन करते है । और यह अत्यधिक आश्चर्य है कि-

बिखरे हुए केसरों से भयंकर मुखवाले ऐसे सिंह, अत्यंत मद की श्रेणि से शोभते हुए हाथी, अत्यंत मेधावी पुरुष और समरों में शूर-वीर भी स्त्री के पास में अत्यंत कापुरुष बन जाते हैं अर्थात् पौरुष-हीन बन जाते है । अर्थात् ऐसे पुरुषों को भी स्त्रियाँ लीला से वश करती है ।

उसके पश्चात् वह सार्थवाह काम से अत्यंत पीड़ित बनी हुई कामदेव और गाढ़ अंधकार से लज्जा रहित की गयी उस रानी के साथ कामशास्त्र में कही गयी अनेक विधि से क्रीड़ा करने लगा । इस अत्यंत बलवान् और काम-कला में कोविद सार्थवाह ने उसके साथ वैसे क्रीड़ा की, जिससे वह रानी तब से स्व-पति राजा के ऊपर सर्वथा नीरागिनी बनी ।

रानी सार्थवाह से इस प्रकार से कहने लगी- हे सार्थवाह ! इस तेरे प्रथम समागम से ही मांजिष्ठ-राग के समान मैं तुझ पर अनुरागिनी बनी हूँ । वैसे राजा ने पहले कभी-भी मेरे मन को

आह्लादित नहीं किया था, जैसे तुमने मेरे मन को आह्लादित किया है। जैसे राहु से ग्रस्त बना चंद्र क्षीणता को प्राप्त करता है, वैसे ही आपके वियोग से दुर्बल की गयी मैं क्षण के लिए भी उसे सहन नहीं कर सकूँगी। हे स्वामी ! इसलिए आप मेरे ऊपर प्रसन्न होकर और कृपा लाकर शीघ्र ही पुनः दर्शन दीजिए। आप के ऊपर एक मनवाली और अनाथ मुझे न भूले, इस प्रकार यह सौ बार मैं अंजलि जोड़कर प्रार्थना कर रही हूँ। कदाचित् राजा यहाँ पर पाँचवें दिन में आये, इसलिए राजा के भय से व्यर्थ ही मेरे प्रेम को न छोड़े। इसप्रकार उसके वचन को स्वीकार कर अपने महल में जाने की इच्छावाला वह सार्थवाह अश्रु पूर्ण नेत्रोंवाली रानी के द्वारा अनुसरण किया हुआ उस गवाक्ष के समीप में आया। सार्थवाह ने तत्पश्चात् नीचे स्थित अपने मित्र से पूर्व में कहे गये संकेत को किया। संकेत को सुनकर उस मित्र ने भी शीघ्र ही पुच्छ के ऊपर अत्यंत दृढ रस्सी से बांधी गयी चन्दनगोधा को पूर्व के समान ही महल ऊपर चढ़ाया। उसके पश्चात् पुच्छ के ऊपर बांधी हुई रस्सी को पकड़कर सार्थवाह नीचे उतरा और चित्त में भोगी हुई उस अत्यंत प्रिय रमणी का ही ध्यान करता हुआ मित्र के साथ अपने महल में लौट आया।

सार्थवाह के निकल जाने पर उसके विरह को नहीं सहन करती हुई वह राजपत्नी कपिकच्छु से स्पर्श की हुई के समान समस्त शरीर में उत्पन्न खुजलि की व्यथा से आकुलित बनी लेश भी शान्ति को प्राप्त नहीं कर रही थी। उसके मन रूपी वन में सार्थवाह के वियोग रूपी अग्नि के जाज्वल्यमान हो जाने पर चिन्ता रूपी शिखा की आवलि से उसका सुख रूपी महान् वृक्ष भस्मसात् हो गया था। उस सार्थवाह से समागम रूपी तृष्णा से उत्पन्न अत्यंत दुःख से व्यथित बनी हुई वह यूथ से भ्रष्ट बनी हरिणी के समान बड़े कष्ट से दिन को

भी वर्ष के समान व्यतीत करने लगी थी । नाक पर बांधे रस्सीवाले बैल के समान तत्पश्चात् वह सार्थवाह उसके प्रेम रूपी पाश से आकृष्ट बना पुनः रात्रि में उसके समीप में आया । उसके बाद जैसे अपनी प्रेयसी के साथ क्रीड़ा करता है, वैसे उसके साथ शंका रहित समस्त रात्रि क्रीड़ा की । रात्रि के अवसान में पुनः स्व महल में आया। इस प्रकार सार्थवाह प्रतिरात्रि गमनागमन करने लगा । इस प्रकार नयन रूपी माली के द्वारा आरोपण किया गया सरस आलाप रूपी मेघ से सिंचित बना तथा संभोग रूपी मनोरथ से अतिगाढता को प्राप्त हुआ उनका प्रेम रूपी वृक्ष क्रमशः बढ़ने लगा। वे दोनों भी अन्योन्य विरह को सहन करने में असमर्थ रात्रि और चन्द्र के समान परस्पर वियोगी बने क्षण भर के लिए भी शोभित नहीं हुए थे ।

सार्थवाह ने उसके कथन से विश्वस्त पुरुषों के द्वारा अपने महल से प्रारंभ कर उस भवन के मूल स्तंभ तक बड़ी सुरंग खुदवाई। उसकी भीत पर कीये गये द्वार से खींचकर और लाकर भवन के मध्य भाग में समापन की । उसके चारों ओर सीढियाँ करवाई । स्तंभ के मूल द्वार के मध्य भाग में सुंदर शयन स्थान करवाकर गृह के मध्य भाग में कोई भी न जान सके ऐसा द्वार करवाया । द्रव्य से वश कीये गये कारिगरों ने सार्थवाह के आदेश से गुप्त रीति से यह समस्त भी शीघ्र ही किया । द्रव्य से क्या नहीं होता ? दुष्कर भी सुलभ बन जाता है । उसके पश्चात् वृक्ष के ऊपर भँवरे के समान स्तंभ के ऊपर निवास करता हुआ सार्थवाह उस गृह रूपी सरोवर में जाकर राज-हंसी के समान उस विक्रम की पत्नी को नित्य भोगने लगा ।

एक दिन प्रातःकाल में अकस्माद् ही वहाँ राजा विक्रमार्क आया । तत्काल ही कीये हुए संभोग चिह्न से उपलक्षित उसे देखकर राजा मन में सोचने लगा कि- अहो ! यह भिल्ली के समान बंधन-

हीन केशों को कैसे धारण कर रही है ? तथा वानरों की क्रीड़ा-भूमि के समान इसकी पत्रावली कैसे छेदी हुई दीखाई दे रही है ? और प्रफुल्लित दोनों गालों पर ताम्बूल राग का चिह्न कैसे हुआ है ? क्रीड़ा के आयास से उत्पन्न हुए प्रभूत पसीने के बिन्दु समूह से विभूषित अंगवाली और रात्रि के जागरण से अत्यंत लाल नेत्रों को धारण करनेवाली तथा अशेष गिरे हुए ताम्बूल राग से संदष्ट अधर-पल्लववाली कैसे दीखाई देती है ? हा ! इस एक स्तंभवाले महल में पुरुषान्तर का प्रवेश असंभव होते हुए भी यहाँ स्थित यह कैसे अन्य पुरुष के द्वारा भोगी गयी है ? इस प्रकार सुरक्षित की गयी भी यह खंडित शीलवाली हुई है, यह काम-किंकरी है, इसलिए इसे धिक्कार हो ।

इसके मनो-वांछित फल को कल्पवृक्ष के समान मेरे द्वारा पूर्ण कीये जाने पर भी, इसने जो अन्य पुरुष का सेवन किया है, वह अद्‌भुत बना है । इससे अनुमान किया जाता है कि स्त्रियों में दुष्पूरता ही रही हुई है । यदि इसे सती माने तो इसके शरीर ऊपर तात्कालिक संभोग के चिह्न कैसे दीखायी देते है ? और इस भवन में अकेली स्थित इसके गालों पर चुंबन से उत्पन्न ताम्बूल का रंग और दाँत का क्षत कैसे बना है ? उससे यह अवश्य ही किसी रसिक पुरुष के साथ निरंतर ही क्रीड़ा कर रही है । मैं ऐसी असती को भी सती मान रहा हूँ ? अहो ! मेरे भय को भी छोड़कर इसे संभोग करने के लिए जो पुरुष यहाँ आ रहा है, वह भी मेरे समान ही सिद्ध अंजन आदि विद्यावाला होगा ? नही तो कैसे इस प्राण अपहारी स्थल पर आकर कोई ऐसे कार्य का आचरण करे । जो कि यह तत्काल की हुई संभोग लक्षणवाली देखी जाती है, उससे वह जार भी अब यही थोड़ी दूरी पर हो, इसप्रकार विचार करते हुए राजा विक्रमार्क ने उस जार पुरुष

के अवलोकन के लिए वहाँ सर्वत्र दृष्टि प्रसारित की । परन्तु जैसे काष्ठ के मध्य में रहा कीड़ा किसी के द्वारा नहीं देखा जाता है, वैसे ही स्तंभ के आगे स्थित उस जार को नहीं देखा । उसके बाद निद्रा के भंग से आँखे मिल जाने से रानी से अविदित आशयवाला राजा अपने स्त्री के प्रेम रूपी दूध को पीनेवाले उस जार पुरुष रूपी बिल्ली को जानने की इच्छा से अपने महल में लौट आया ।

पुनः रात्रि में वेष का परावर्तन कर विविध विद्या से संपन्न राजा ने गुप्त रीति से पर्यटन करते हुए एक योगी को देखा । अत्यंत जीर्ण वस्त्र से ढंका, साक्षात् कपट की मूर्त्ति के समान लगता तथा जीर्ण वस्त्र से शरीर को ढंका हुआ, हाथ में मनोहर और अनेक प्रकार के मिष्टान्न,फल, पुष्प आदि को धारण कीये हुए एक योगी को देखकर मन में शंका सहित विक्रमार्क राजा गुप्त रीति से उसके पीछे चला । वहाँ मठ में जाकर कछुए के समान संपूर्ण शरीर को ढंककर के अलक्षित होते हुए राजा किसी स्थान पर स्थित हुआ । उस योगी के चरित्र को जानने की इच्छावाला राजा जब एकाग्र चित्तवाला होकर स्थित हुआ, तब उस योगी ने सर्वत्र अंधकार के समूह के फैल जाने पर अपने जटा समूह से एक लघु डिब्बी में से एक सोलह वर्षीय अति सुंदरी युवति को बाहर निकाली ।

प्रथम लघुकरण विद्या से अति लघु की गयी थी अब उसे विद्यान्तर से तरुणी कर मिष्टान्न आदि का भोजन करवाकर और ताम्बूल आदि समर्पित कर उससे क्रीड़ा करने लगा । उस योगिनी के साथ चिर समय तक स्वेच्छा से क्रीड़ा कर संभोग के श्रम से वह योगी सो गया । उस योगी के अति गाढ़ निद्रा को प्राप्त हो जाने पर, उस योगिनी ने भी अपने अति लंबे केशों में से एक अत्यंत छोटी डिब्बी को बाहर निकालकर उसके मध्य में से जैसे सूर्य की कान्ति कमलिनी

के कोश में से भ्रमर को प्रकट करती है, वैसे अत्यंत लघु पुरुष को प्रकटित कर और विद्या से उसे तरुण और अति सुंदर आकारवाला बनाकर उसके साथ अत्यंत क्रीड़ा करने में प्रवृत्त हुई । जैसे कोई सर्पग्रही सर्प से क्रीड़ा करवाकर कुंडलाकारवाले उसे करण्डक में रखता है, वैसे ही वह योगिनी चिर समय की क्रीड़ा से कृतकृत्यता को प्रास होती हुई विद्या से उस उपपति को छोटा बनाकर उसी डिब्बी में रखकर उसे अपने बालों में धारण किया, उसके पश्चात् पति योगी के पास जाकर सो गयी ।

आश्चर्य को वहन करनेवाले इस कौतुक को देखता हुआ राजा विस्मित होते हुए सोचने लगा-अहो ! जिसे यह योगी पुरुषान्तर से मैथुन के भय से विद्या के योग से रूपान्तर के विधान से सिर के ऊपर गुप्त-रीति से रक्षण कर रहा है, वह भी जार पुरुष के साथ इस प्रकार स्वेच्छा से क्रीड़ा कर रही है, तो इतर स्त्रियों के सतीत्व की कौन मतिमान् पुरुष श्रद्धा करे ? क्योंकि सतत ही निज शरीर पर विद्या के प्रभाव से रूपान्तर कर संरक्षण की गयी स्त्री यदि जार को भजती हुई प्रत्यक्ष देखी गयी है, तो अन्य स्त्रियों की क्या वार्त्ता ? जो हमेशा यह स्त्री अपने पति के पास में रह रही है, वह भी भय को छोड़कर जार को भज रही है, तो इसे निसर्ग से ही 'भीरु' इसप्रकार क्यों कहते है ? अथवा त्रिभुवन को जीतनेवाले काम के सहाय से युवतियाँ निसर्ग से ही भय को छोड़ देती है अथवा क्या यह ''सोया हुआ मनुष्य मृत तुल्य होता है'' इस प्रकार के अफवाह से सोये हुए अपने पति को मृत जानती हुई और निर्भय होती हुई पुरुषान्तर का सेवन कर रही है ? और यह किसी अन्य पुरुष का सेवन न करे, इसप्रकार की बुद्धि से ही यह योगी जागृत होते हुए इसे विद्या की महिमा से वश कर और अत्यंत लघु बनाकर सदा अपने समीप में रक्षण कर रहा है ।

इस स्त्री के ऐसे आचरण से इतर महान् सज्जन भी लघुता को प्राप्त करते है, ऐसे अन्याय में तत्पर इन दोनों की विद्या भी अविद्या के समान शोभा को धारण नहीं करती है । और यह स्त्री पुरुष रूपी कमल में संकोच तथा विकास को उत्पन्न करती है । उससे जाना जाता है कि सूर्य, सूर्य के समान नहीं होता है वैसे ही यह विद्या भी समान नहीं हो सकती है । और जैसे विद्या के प्रभाव से इसका सद् भी कुलटापन दुर्ज्ञेय है, वैसे ही मैं भी अपनी स्त्री के दुश्चरित्र को जानने में कदापि समर्थ नही बनूँ। उस हेतु से अब तक लोगों के द्वारा अज्ञात इसके दुःशील को जैसे अति गुप्त महान् रोग को वैद्य के समान प्रकाशित कर स्व-रानी के भी चिरकालिक कौशल्य को जैसे-तैसे भी मैं अवश्य ही प्रकटित करुँगा, नहीं तो आगे सुंदर नहीं होगा । जो कि मुझ जैसों को पर-दोष का उद्घाटन नहीं घटता है, पापों के जनकत्व के कारण से, फिर भी महा-धूर्त्तों के धूर्त्तता के उद्घाटन में कोई दोष नहीं लगता है, विपरीत धर्म ही उदय को प्राप्त करता है, इस प्रकार विचार कर राजा अपने महल में आकर सो गया ।

रात्रि के व्यतीत हो जाने पर, प्रभात में उठकर पुनः उस मठ में जाकर उस योगी को अति आग्रह से निमंत्रित कर राजा उसके साथ उस एक स्तंभवाले भवन में आया । वहाँ आकर राजा ने छह लोगों के लिए दिव्य और स्वादिष्ट भोजन सामग्री को पकाने के लिए रानी को आदेश दिया । उनके भोजन के लिए सुंदर प्रदेश में अलग-अलग पाँच आसनों को और उतने ही पानी से भरे हुए जल-पात्रों को और उतनी ही थालियाँ रखी । तत्पश्चात् राजा ने उस भवन में सीढ़ी के प्रयोग से चढ़े हुए उस योगी को निर्मल पानी से स्नान कराकर प्रथम आसन ऊपर बैठाया । उसके बाद राजा ने योगी से इस प्रकार कहा कि- हे योगी ! जो तेरी प्रेयसी है, वह भी भूख से पीड़ित है । तुम उसे

भोजन कराएँ बिना कैसे भोजन करोगे ? और उसके भूख से बाधित रहते तुझे भोजन कराते मुझे भी पंक्ति-भेद से उत्पन्न दोष लगेगा । इसलिए अपनी जटा से उस स्त्री को प्रकाशित कर इस द्वितीय आसन पर स्थापित करो । क्योंकि वह मेरे द्वारा निज दृष्टि से ही देखी गयी है, इसलिए इस विषय में मुझे मत ठगो, शीघ्र ही उसे प्रकट कर भोजन कराओ ! अब इसे ही योग्य मानो ! राजा के अति आग्रह से इस वचन को सुनकर योगी इस प्रकार मन में विचारने लगा कि- जिसे सूर्य भी देखने के लिए समर्थ नहीं है, उसे इस राजा ने कैसे देख लिया? रात्रि में यह राजा गुप्त-चर्या में इधर-उधर पर्यटन करते हुए उसे देख लिया हो । इसलिए ही अब राजा ने इस गुप्त भेद को जान लिया है । यदि मैं राजा को ठगूँ तो सुंदर नहीं होगा । इस प्रकार विचार कर शीघ्र ही उसे जटा के समूह से बाहर निकालकर और विद्या से उसे प्रौढ कर द्वितीय आसन पर बैठाया ।

उस समय उसे भी राजा कहने लगा कि- हे भद्रे ! तुम भी अपने बालों में स्थित लघु डिब्बी में से अति प्रिय उस जार को प्रकट करो, क्योंकि उत्तम लोगों को भूख से पीड़ित अपने प्रिय को छोड़कर भोजन करना अनुचित है । जैसे इस योगी ने तुझको भजते हुए योग-अभ्यास को जलांजलि दी है, वैसे ही जार का सेवन करते हुए तुमने भी पतिव्रतापने को जलांजलि दी है । इसलिए ही जार के प्रकटन में तुम कोई-भी स्वामी का भय मत करो ! जो दोष दोनों में समान है, वहाँ एक अन्य को दूषित नहीं करता है, इस प्रकार यह न्याय का मत है । जैसे कि नैयायिक कहते है कि- जहाँ दोनों का समान दोष है, वहाँ परिहार भी अर्थात् उस दोष का निवारण भी उन दोनों का समान ही है । दोनों के समानपने से उन दोनों के मध्य में एक को उस दोष के निवारण केलिए नहीं जोड़ना चाहिए ।

और अधिक यह भी है कि- अति कामुक यह योगी छह आँखों से हमेशा तेरा रक्षण कर रहा है । फिर भी मैंने जैसे इसके इस वृत्तांत को जाना है, वैसे ही मैं तुम्हारे अति गुह्य चरित्र को भी जानता हूँ । इसलिए भय और लज्जा को छोड़कर तथा मेरे वचन का आदर कर बालों में स्थापित डिब्बी में रहे उस जार को प्रकट करो। इस प्रकार राजा के आग्रह से भय को छोड़कर प्रथम डिब्बी से अति ह्रस्व पुरुष को प्रकट कर पश्चात् विद्या-योग से उसे यथोचित कर तीसरे आसन पर बैठाया ।

तत्पश्चात् राजा रानी से इस प्रकार कहने लगा कि- हे सुंदरी! तुम भी योगिनी के समान मेरे वचन को मानकर शीघ्र ही अपने जार को प्रकाशित करो । इस प्रकार राजा के आदेश को सुनकर मन में साहस लाकर क्रोध सहित कहने लगी- हे स्वामी ! क्या मैं कुलटा हूँ जो जार का सेवन करुँ ? आपने ऐसे अयोग्य वचन क्यों कहा ? मैं सत्य कह रही हूँ कि मेरे प्राणाधार और प्राण-प्रिय आप ही हो, अन्य कोई नही है । तथा मेरे रक्षण में अथवा विपत्ति में आप ही शरणभूत हो और मेरे मन के अभीष्ट फल देने में आप ही चिंतामणि तुल्य हो और मेरा पोषण करने से आप ही जीवन तुल्य हो । अन्य क्या कहूँ- कल्पवृक्ष के समान सकल मनोरथ को पूर्ण करनेवाले आपको छोड़कर, जैसे ऊँटनी बांस के अंकुर के बिना अन्य की स्पृहा नहीं करती वैसे ही मैं स्वप्न में भी कैसे अन्य पुरुष का सेवन करुँ? कदापि यह संभवित नही है, यही तत्त्व है । तथा अन्य कुलीन स्त्री भी मन से भी जार का सेवन नही करती, तो सत् कुल में उत्पन्न हुई और अत्यंत महान् ऐसे आपकी कुल वधू होकर मैं अन्य पुरुष का सेवन करुँ, ऐसा कदाचिद् भी नही घटता है । हे विद्वद्- शिरोमणि! उससे आपके मुख से ऐसा असत्य और असभ्य वचन कैसे निकला ?

रानी के ऐसे वचन को सुनकर राजा मन में सोचने लगा कि- अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है, कैसी यह साहस की भूमि है । मुझे ही असत्य-भाषी कहती हुई प्रकट भी दोष का अपलाप कर रही है । स्त्री चरित्र को जाननेवाले महान् पुरुषों के वचन को, यह अपने दुश्चरित्र को जानती हुई भी सत्य साबित कर रही है । अर्थात् यह सर्वथा स्त्री-चरित्र के दुर्ज्ञेयपने को ही व्यक्त कर रही है तथा उसे जाननेवाले पंडितों के बंधन को भी स्पष्ट ही सत्य साबित कर रही है । इसका चातुर्य और साहस कैसा है ? यह बड़ा आश्चर्य है, फिर भी किसी उपाय से इसे प्रतिबोधित कर जार को प्रकट करुँ ? इस प्रकार मन में विचार कर राजा ने उसे कहा कि -हे स्त्री ! मैं कदाचिद् भी इस असत्य को नही बोलता हूँ अथवा कोई असभ्य वचन कहता हूँ । क्योंकि मैं कल प्रभात के समय यहाँ पर आया था और तात्कालिक क्रीड़ा चिह्न से उपलक्षित तुझे देखा था । और अन्य पुरुष के बिना विषय सेवन की संभावना नहीं है । उससे प्रत्यक्ष दीखायी दीये विषय को तुम व्यर्थ ही क्यों अपलाप कर रही हो ? मैं सत्य ही कह रहा हूँ, तुम अपने उपपति को दीखाओं और व्यर्थ ही मुझे मत ठगो ! उसे दीखाने में मुझसे लेश मात्र भी भय को प्राप्त न करो । क्योंकि मैं तुझे अथवा जार को नही मारुँगा ! जो अब तुम स्वयं ही उसे दीखाओगी तो तुम दोनों को लेश भी मुझसे भय नही होगा, अन्यथा यदि मैं विद्या से प्रकट करुँगा तो बिना संशय तुम दोनों को मारुँगा, इसे तुम सत्य जानों ।

राजा के ऐसे वचन सुनकर भय रूपी पवन से विध्वस्त की हुई गाढ़ कौटिल्य रूपी मेघमाला ऐसी रानी गगन के समान सुप्रसन्न होती हुई वचन रूपी तारा-समूह को उद्योत करने लगी कि- हे समस्त सहन करनेवाले ! हे स्वामी ! अति उग्र और असहनीय भी हम दोनों के अपराध को क्षमा करो । और कही हुई वाणी सत्य सिद्ध

की जाय अर्थात् अति महान् आपने जो प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम दोनों को नही मारुँगा, वह अवश्य ही सत्य हो इस प्रकार कहकर तत्काल ही उस सार्थवाह को संकेत दिया। वह भी शीघ्र ही प्रकटित हुआ और राजा को देखकर जैसे सागर, अगस्ति मुनि को देखकर भय-भीत हुआ था, वैसे भय-भीत बना। उस अवसर पर तीन दिवस के शीत ज्वर से उत्पन्न कंपन के समान समस्त शरीर में कंपन को धारण करते उसे देखकर राजा कहने लगा कि- अरे ! तुम डरो मत, मैंने पूर्व में तेरे अपराध को क्षमा किया है। तब सार्थवाह ने मन में धैर्य धारण कर प्रथम राजा को नमस्कार किया। उसके बाद हर्ष रूपी समुद्र में निमग्न हाते हुए गद्-गद् वाणी से राजा से कहने लगा कि- हे प्रभु! मुझ दुराचारी- शिरोमणि ने जो ऐसा कार्य किया है, उसे सज्जन-शिरोमणि आप प्रभु क्षमा करे ! क्योंकि लोक में प्रतिकार करने में असमर्थ पुरुष की क्षमा होती ही है, वहाँ कौन-सा आश्चर्य है ? और जो उसके प्रतिकार करने में समर्थ है और यदि वह किसी अज्ञ पुरुष के बड़े अपराध को भी क्षमा करे, तब उसके समान अन्य कोई क्षमावान् नही है। अन्य राजा राक्षस के समान अपराध के बिना भी लोगों को यम के अतिथि बना देता है। और असहनीय अपराध होने पर भी क्षमा-सागर के समान आपने लेश मात्र भी पीड़ित नहीं किया, उससे जिसकी शक्ति अति-अल्प होती है, वह ही वृश्चिक के समान अन्य को पीड़ित करता है। पृथ्वी ऊपर यम के समान आकारवाले ऐसे दुर्जन बहुत होते है, परन्तु फणीन्द्र के समान अतुल सकल शक्तिमान् अपराध करनेवाले मनुष्य पर भी क्रोध के लेश को भी नहीं करते हुए आपके समान पुरुष विरल ही होता है। इसका यह अभिप्राय है कि- बहुत शक्तिवाला होकर भी जैसे शेष नाग पृथ्वी को धारण करता है और उस पर रहे लोग असहनीय अपराधों

को भी करते हैं, वह उनको भी सहन करता है, कदापि धारण की गयी पृथ्वी को नहीं छोड़ता है । उसी प्रकार से जो राजा क्षमा और शान्ति को धारण करते हैं तथा प्रजा का पालन करते हैं, वे अपराध करनेवाले अज्ञ लोगों पर क्रोध को छोड़कर कृपा ही दीखाते हैं । समस्त जाननेवाले शक्तिमान् पुरुषों की क्षमा ही सर्वस्व होती है, इसलिए वे महात्मा क्षमा काल में उनके समस्त दोषों को विस्मरित करते ही है । जो कि जगत् में कहीं पर भी शक्तिमान् पुरुषों की क्षमा नहीं देखी जाती है, तो भी आप शक्तिशाली में भी जो अनुपम सहनशीलता है वह प्रशंसनीय ही है । आप जैसे क्षमाकारी पुरुष-रत्न के होने से ही यह जगत् सत्य ही 'रत्नगर्भा' कही जाती है। आप ही उसे अन्वर्थ कर रहे हो, अन्य कोई भी नहीं, यह हम सत्य मान रहे है ।

इसप्रकार चातुर्य से कहते उस सार्थवाह को राजा ने चौथे आसन पर बैठाया । तत्पश्चात् कपटता से परिपुष्टत्व को प्राप्त अपनी उस रानी को पाँचवे आसन पर बैठाया । उसके बाद राजा ने स्वयं ही उन पाँचों को भी सरस भोजन कराकर स्वयं ही भोजन किया । उस योगी को सत्कार पूर्वक विसर्जित किया और हार्दिक प्रेम के अमृत रस समूह से उस सार्थवाह को समीप में स्थापित किया ।

लोक में प्रसिद्ध श्री सौधर्म बृहत्तप नामक निर्मल गच्छ के स्वामी तथा जगत्-जयी श्री राजेन्द्रसूरि के दोनों चरण कमलों में सदा यतीन्द्रमुनि के द्वारा रचित इस गद्य प्रबन्ध चंपकमाला के चरित्र में यह निर्मल द्वितीय प्रस्ताव संपन्न हुआ ।

तृतीय प्रस्ताव

अब उत्तमोत्तम छवीवाला राजा सर्वांग से सुंदर उस सार्थवाह के प्रत्येक अंगोपांग को स्निग्ध दृष्टि से देखता हुआ सुवर्ण की चंपकमाला के समान सार्थवाह के मस्तक पर स्थित अपूर्व और नही मुर्झाती हुई चंपकमाला को देखी ! माला को देखकर मन में आश्चर्य से युक्त बने राजा ने उसे पूछा कि- हे सार्थवाह ! मेरे अंग के संग से पुष्पों की माला शीघ्र ही मुर्झा जाती है, किन्तु आपके मस्तक पर यह पुष्पों की माला नही मुर्झाती हुई कैसे दीखायी दे रही है ? क्या यह देव के द्वारा अर्पित की गयी है जो यह नहीं मुर्झाती है ? तुम सत्य कहो ! इस प्रकार राजा के आश्चर्य वहन करनेवाले वचन को सुनकर सार्थवाह राजा से कहने लगा कि- हे प्रभु ! मैं उसका जो कारण कह रहा हूँ, उसे आप सत्य ही जाने, झूठा न जाने । मेरे मस्तक पर स्थित यह माला मेरी पत्नी के अखंड शील के प्रभाव से ही कदापि नहीं मुर्झाती है। पुनः राजा कहने लगा कि- हे श्रेष्ठी ! अब प्रस्तुत समय में स्त्रियों का अखंड शील खरगोश के सींग के समान ही लग रहा है । मेरे द्वारा कदाचिद् भी अखंडित् शीलवाली स्त्री नहीं देखी गयी है, तब उसे हम कैसे सत्य माने ? सार्थवाह कहने लगा कि- हे स्वामी ! इसे आप प्रारंभ से सुने -

अंग देश में लक्ष्मी के गृह के समान सर्व ऋद्धिशाली चंपा नामक अत्यंत बड़ी नगरी शोभ रही है । वहाँ कुबेर के समान धन्ना नामक श्रेष्ठी निवास कर रहा था । धनकेलि नामक मैं उसका पुत्र हूँ। वह मैं बाल-चन्द्र के समान प्रति दिवस बढ़ता हुआ और कला से पूर्ण होता हुआ जैसे सागर को आह्लादित करता है, वैसे ही क्रमशः प्रतिदिन नयी-नयी कलाओं को ग्रहण करता हुआ और शैशव को

छोड़ता हुआ, सत् लावण्य रूपी अमृतों से पूर्ण होता हुआ और तारुण्य से उल्लसित होता हुआ निज कुल रूपी समुद्र को बढ़ाने लगा।

इस ओर कौशाम्बी नगरी में विमलवाह श्रेष्ठी की साक्षात् लक्ष्मी के समान रुक्मिणी नाम की पुत्री थी । पिता ने बड़े महोत्सव पूर्वक उसका विवाह मेरे साथ किया । प्राणों से भी अधिक प्रिय उसे मैं अपने घर पर ले गया । मैं उसके साथ निर्भाग्य प्राणी को दुर्लभ तथा अनुपम भोग को भोगने लगा । अब एक दिन प्रस्ताव में पंडित के द्वारा कहे गये नीति-वाक्य को मैंने इस प्रकार से सुना-

जो पुरुष पिता की लक्ष्मी को भोगता है, वह अत्यंत पापी होता है, तथा देवदारु वृक्ष के समान पिता के सुख के लिए समर्थ नहीं होता है ।

कहा भी है कि-

सुनीतियों के जानकार तथा सज्जन पुरुष कहते है कि पिता के द्वारा उपार्जन की गयी विभूति अथवा ऐश्वर्य भगिनी है, इसलिए वह सत्पात्र में ही देनी चाहिए, किन्तु यौवन के अभिमुख तरुण पुरुषों से वह कदापि भोग्य नहीं है । अन्य यह भी है कि-

लोक में स्तन-पान करना, मन्मन वचन को कहना, चपलता, कारण रहित ही हँसना, लज्जा-रहितता, धूल से क्रीड़ा करना और पिता के लक्ष्मी का उपभोग, इनको करने के लिए अज्ञ शिशु ही समर्थ है, अन्य कोई भी नहीं, यह भावार्थ है ।

इस प्रकार नीति-वचन को सुनकर धन के उपार्जन के लिए जल-मार्ग से जाने की इच्छावाले मुझे, कदाचिद् मेरे पुत्र को जल से उपद्रव हो ऐसी शंका से पिता ने निषेध किया । उससे मैं विविध विक्रेय योग्य वस्तुओं को बैल के ऊपर रखकर भूमि-मार्ग से ही व्यापार करने के लिए देशान्तर गया था । वहाँ जाकर के उन वस्तुओं

को बेचकर अचिंतित लाभ प्राप्त किया था । तत्पश्चात् उस देश की विविध वस्तुओं को खरीदकर और लाख बैलों पर रखकर अपने घर में लाकर निज पिता को संतोषित किया था । इस प्रकार देश तथा विदेश में बार-बार व्यापार करने के लिए गमन-आगमन करते मैंने अपरिमित लक्ष्मी का उपार्जन किया था । तब मेरे बैल-यूथ के खुर से पीसी हुई धूलि समूह के उछलने से वर्षा-ऋतु से भिन्न काल में भी आकाश को निरंतर ही मेघों से आच्छादित कीये हुए और अंधकार कीये हुए के समान जानते हुए तथा दिन में भी सूर्य को नही देखने से मुझे समस्त लोग भी गगनधूलि इस प्रकार कहने लगें । तत्पश्चात् सर्वत्र मैं गगनधूलि नाम से ही प्रख्याति को प्राप्त हुआ ।

उस अवसर पर चम्पा नगरी में सकल स्त्री-जन में शिरोमणि, रूप-लावण्य और अवर्णनीय सौन्दर्य के गृह समान कामपताका नामक कोई एक वेश्या रहती थी । एक दिवस गवाक्ष में सुख-पूर्वक बैठी हुई वह वेश्या उसी मार्ग से जाते मेरे मन को सहसा ही अपहरण करने लगी थी । मुनियों के भी सुस्थिर मन को चलायमान करने के लिए उर्वशी के समान लोक में जो प्रख्यात है, वहाँ कुटिल कटाक्ष आदि करने से क्षण में ही मेरे चित्त का अपहरण करे, वहाँ कौन-सा आश्चर्य है ? उससे मैं शरीर रूपी गृह में स्थित मन रूपी अमूल्य वित्त उसके द्वारा चुराया हुआ देखकर, यह निन्दनीय है इस प्रकार जानते हुए भी उसके ऊपर अनुराग की अधिकता से उस वेश्या को प्रेयसी की । उसके बाद जैसे बैल गाय के समीप में जाता है, वैसे मैं उसके प्रेम रूपी रस्सी से आकृष्ट किया हुआ उसके समीप में गया ।

उस समय कमल में बैठी हुई लक्ष्मी जैसे निज असीम शरीर के सौन्दर्य से दस दिशाओं को प्रकाशित करती है वैसे ही वह

कामपताका भी अपने सुंदर महल के अंदर सिंहासन पर सुख से बैठी हुई अपने संपूर्ण सुंदर शरीर की छवि की कान्ति से दस दिशाओं को प्रकाश करती हुई, संपूर्ण शरीर ऊपर सुंदर रत्न आभरणों को धारण करती हुई, त्रिभुवन में रहे युवा जन के मन को जीतने के लिए साक्षात् काम के अस्त्र के समान लगती हुई, शरीर की कान्ति से मेनका, रंभा आदि स्वर्ग-अंगनाओं को भी लज्जित करती हुई, शिरीष-कुसुम से भी अधिकतर सुंदर अंगवाली, विद्युद् के समान गौर वर्णवाली, सुंदर तारुण्य से परिपूर्ण, अपने अगण्य पुण्य-लावण्य के योग से राजा आदि लक्ष्मीवंत लोगों को दास करनेवाली, मदिरा के समान उन्मत्त करनेवाली, चमकते हुए होंठोवाली, दलदार कमल-पत्र के समान विस्तृत नेत्रोंवाली मेरे द्वारा देखी गयी । अब समस्त वेश्याओं में प्रधान वह कामपताका भी सरस युवा और श्रीमंत जन के साथ प्रीति की कामना करती हुई उस प्रकार से अनुरागी मुझे देखकर विकसित मुखवाली होती हुई और कटाक्ष करती हुई अपने आसन से उठकर दोनों हाथ रूपी पल्लवों से अंजलि जोड़कर इस प्रकार से कहने लगी कि- हे सुंदर ! यहाँ आओ और मुझ दासी पर कृपा-दृष्टि रूपी वृष्टि करो । अपने वांछित को कहो, जो तुम करने की इच्छावाले हो, उसे करो, मेरा यौवन तेरे आधीन ही है इसे तुम सत्य जानो ।

हे राजन् ! इस प्रकार उसके वचनों की रचनाओं को सुनकर के उसके गुण-समूह और अगण्य तारुण्य-रूप लावण्य से मोहित होता हुआ मैं भी उसके घर में निवास करने लगा । रंभा आदि वेश्या के साथ देवता के समान मैं भी उसके साथ निरंतर ही क्रीड़ा करने लगा । प्रतिदिन वह जितने धन की इच्छा करती थी, मैं पिता के द्वारा अर्पित उतने धन को उसे देता था । इस प्रकार मैंने वहाँ बारह वर्ष व्यतीत कीये ।

अब एक दिन धन ग्रहण करने की इच्छा से उसने मेरे पिता के समीप में अपनी दासी भेजी थी । परन्तु कृपण के घर से भिक्षुक के समान धन के बिना ही लौटी अपनी दासी को देखकर मति से विकल हुई और धन मात्र लोलुपतावाली उस वेश्या ने मुझे कहा कि- अरे पामर ! अब तुम निर्धनता को प्राप्त हुए हो इसलिए अब मेरी भोग आशा को छोड़ दो, मेरे घर का त्याग करो और अपने घर पर चले जाओं । क्योंकि मुझ जैसों के घर में निर्धन लोग क्षण-भर भी रहने के लिए समर्थ नहीं होते है । और जो वेश्याएँ होती है, वे समस्त ही धन से युक्त औदार्यशाली पुरुषों के ही वश में रहती है, कदाचिद् भी तुझ जैसे रंकों की इच्छा नहीं करती है, यह सभी जानते ही है । तेरे निर्धनता को प्राप्त होने पर, अब तुझ पर मेरा प्रेम कैसे होगा ? निर्धन पुरुष को मित्र भी शत्रु के समान देखता है, जैसे कि-

जल-हीन कमल वन को पद्म-बन्धु होते हुए भी क्या सूर्य शोषित नही करता है ? अर्थात् शोषित करता ही है । अधिक यह भी है कि जैसे लक्ष्मी से रहित कलावान् पुरुष को भी मतिमंत लोग कदापि स्वीकार नहीं करते है, किन्तु नैमित्तिक के समान क्षीण बने चंद्र के सदृश छोड़ते ही है, वैसे ही तुम भी यहाँ से चले जाओं और चिर समय से जैसे मुझ पर अनुराग था यदि आगे वैसे करने की इच्छावाले हो तो शीघ्र ही धन का उपार्जन कर पुनः यहाँ पर आओं, अन्यथा नहीं । इस प्रकार धन मात्र में लोलुपतावाली इसके कुत्सित वचन को सुनकर मैं इस प्रकार से शोच ने लगा कि- यह धन मात्र की इच्छा करती है, लेश भी दाक्षिण्य से लज्जित नहीं हो रही है, क्योंकि यह चिर समय से अनुरागी और अत्यंत धन देनेवाले मुझे भी ऐसे कहकर छोड़ रही है । धन के लोभ से जो कुष्ठी पुरुष को भी मदन के समान मानती हुई सेवन करती है, अर्थ मात्र सारवाली उस पर

तथ्य अनुराग कैसे संभवित हो ? अर्थात् कदाचिद् भी नहीं होता है। जैसे कि- जन्म से अंध, कुरूपवाले को, वृद्धावस्था से जीर्ण बने संपूर्ण अंगवाला, चातुर्य आदि गुणों से रहित ग्रामीण जन को, दुष्कुल में जन्म प्राप्त कीये हुए को और गलते हुए कुष्ठ रोग से पीड़ित अंगवाले को- ऐसे पुरुष को भी थोड़े धन की इच्छा से अपने मनोहर शरीर को देती हुई और विवेक रूपी कल्पलता के लिए शस्त्र के समान वेश्याओं पर कौन पुरुष रागी हो ? अर्थात् कोई भी नहीं होता ।

इस प्रकार से मन में विचार कर और अपने वस्त्र तथा आभरणों को सहसा ही ग्रहण कर थोड़ा दुःखित मनवाला होता हुआ मैं उसके घर से निकला । अत्यंत खेदित होता हुआ पसीने के बिन्दुओं से विभूषित शरीरवाला मार्ग में जाते हुए प्रति स्थान पर स्खलित होता हुआ मैं शीघ्र ही अपने घर पर आया । और वहाँ अरण्य के समान शून्य तथा स्थल मात्र अवशेष ऐसे नष्ट हुए संपूर्ण भवन को देखकर दोनों आँखों से निरंतर अश्रु-धारा को छोड़ने लगा । तब वेश्या के अपमान रूपी दुःखाग्नि से जलाये गये पर अपने घर, धन, परिजन आदि क्षय से उत्पन्न असहनीय दुःख मुझे घाव के ऊपर फोड़ अथवा सूजन के समान हुआ था । तब मुझे जो अवाच्य दुःख हुआ था, उसे परमात्मा ही जानता है । उसके पश्चात् मैंने कैसे-भी स्वास्थ्य प्राप्त कर पास में रहे लोगों से पूछने लगा कि- मेरे माता-पिता कहाँ गये है ? यहाँ पर मेरे घर थे, वे अब क्यों दीखायी नहीं दे रहे है ? तथा मेरी पत्नी कहाँ गयी ?

लोगों ने कहा कि- हे आर्य ! वेश्या में आसक्त तुझे जानकर पुत्र और धन के वियोग से अत्यंत दुःख का अनुभव कर तेरे माता-पिता मर चुके हैं । क्योंकि लोक में मात्र पुत्र का वियोग ही दुःसह दुःख को अर्पण करता है, तो धन और पुत्र दोनों के वियोग में वैसी दशा

हो, वहाँ कौन-सा आश्चर्य है ? तत्पश्चात् तेरी पत्नी-जो कि मेरा स्वामी वेश्या में आसक्त बना हुआ उसके घर में निवास कर रहा है, गृह कार्यों में दक्ष मेरी, घर की और लक्ष्मी की भी उपेक्षा कर रहा है कभी-भी घर में नही आता है और मेरे सासु-ससूर मरण को प्राप्त हुए है, इसलिए ही स्वामी होते हुए भी उसके बिना मुझ अकेली का यहाँ रहना योग्य नहीं है । अब मुझ दुःखिनी को पितालय में निवास ही श्रेयस्कारी है, इस प्रकार से निश्चय कर और अवशेष वस्त्र-आभरण आदि को ग्रहण कर, रोती हुई तथा नष्ट प्रायः इस मकान को जलांजलि देती हुई के समान, आप हमारे पड़े हुए इस भवन की रक्षा करो, इसप्रकार बार-बार अपने संबंधीवर्ग को आदर सहित समझाती हुई किसी एक नौकर को साथ में लेकर कौशाम्बी नगरी में अपने पिता के घर पर गयी है, इस प्रकार तुम अपने माता-पिता और पत्नी के वृत्तांत को जानो । हे मित्र ! भवितव्यता बलवान् है, यहाँ जो नल-राम आदि अत्यंत महान् और उत्तम पुरुष हुए हैं, वे भी उसे दूर करने के लिए समर्थ नहीं हुए है । जैसे कि -

जिस इन्द्र का बृहस्पति नेता है, वज्र आयुध है, सैनिक ऐसे देव है, दूसरों से अग्राह्य स्वर्ग राजधानी है और ऐरावत हाथी वाहन है। इस प्रकार के ऐश्वर्य और बल से युक्त होता हुआ भी वह इन्द्र युद्ध में बलवंत शत्रुओं के द्वारा पराजित किया गया था ।

उससे स्पष्ट है कि भाग्य अथवा भवितव्यता का शरण ही श्रेष्ठ है और व्यर्थ ही कीये जाते पौरुष अथवा उद्यम को धिक्कार हो, धिक्कार हो । तथा यह भी है कि - इस संसार में कोई मनुष्य पानी में निमग्न बने अथवा मेरु पर्वत के शिखर ऊपर चढ़े अथवा स्थित हो, युद्ध में शत्रु को जीते, वाणिज्य, कृषि-सेवन आदि सकल पवित्र कलाओं का अभ्यास करे और अन्य अथवा श्रेष्ठ प्रयत्न कर पक्षी के

समान विस्तीर्ण आकाश में भी जाय, किन्तु कर्म के वश से यहाँ अन-होनहार नही होता है और जो होनहार है वह अन्यथा नहीं होता है क्योंकि कैसे भी भवितव्यता का नाश नही होता है । यही तत्त्व है ।

हे स्वामी ! इस प्रकार घर के समीपवर्ती लोगों के मुख से माता-पिता की वार्त्ता को सुनकर अकथनीय और अन-अनुभवित दुःख ही हुआ । तब मैं शोच करने लगा कि- माता-पिता को ऐसे दुःख देनेवाले, व्यसन की आसक्ति से प्रभूत दुःख का सदन और चन्द्र के समान निर्मल भी निज कुल को मालिन्य करते हुए मुझे धिक्कार हो ! अहो ! बड़े सत्-कुल में उत्पन्न होकर भी मैंने ऐसे अत्यंत नीच व्यसन का सेवन किया है, इसलिए मुझे धिक्कार हो, धिक्कार हो, जिससे कुलकलंकी मेरे द्वारा पूर्व उपार्जित धन और महत्त्व भी विनाश किया गया है ।

जैसे कि आकाश में नव-उदित सूर्य अंधकार समूह को दूर कर सुषमा को धारण करता है, वैसे कितने ही सज्जन पुत्र दुःख लक्षण रूपी अंधकार समूह को दूर कर निज वंश रूपी आकाश को अत्यंत प्रकाशित करते हैं और यावज्जीव निर्मल होकर शोभते हैं । निसर्ग से ही देदीप्यमान कुल में उत्पन्न होता हुआ भी मुझ समान पिता के नाम और धाम के रक्षण में असमर्थ और कुलांगार तुल्य अन्य कोई भी नहीं है । क्योंकि मैंने वेश्या में आसक्त चित्तपने से माता-पिता के मरण को भी नहीं जाना । इसलिए मेरे विवेक, गाढ स्नेह, दाक्षिण्य और विनय को धिक्कार हो, धिक्कार हो ! अहो! व्यसनी होकर पूर्व में संचित संपूर्ण धन का विनाश करनेवाला तथा माता-पिता को अति-क्लेश उत्पन्न करनेवाला मैं सुजन-वर्ग में अपने मुख को कैसे दीखाऊँगा ? अथवा अब जो हुआ, उसके शोक से पर्याप्त हुआ, क्योंकि शोक ही मतिमंतों की मति को भी विनाश

करता है, पश्चात् उससे क्षय उत्पन्न होता है । उसके उत्पन्न होते ही क्रमशः यह शरीर क्षीण होता हुआ नष्ट होता है । इसलिए ही मूर्ख के समान मेरे द्वारा उसके लिए शोक नहीं करना चाहिए । किन्तु लक्ष्मी के लाभ का करण कोई व्यापार ही करना चाहिए क्योंकि धनवंतों को इतर सकल भी मनोरथ अनायास से सिद्ध होते हैं । तथा धन के होने पर पुनः महत्त्व आदि भी स्वंय ही होगा । जैसे कि नीतिशास्त्र में कहा गया है कि-

इस संसार में जिस पुरुष के पास धन है, वह पुरुष कुल से हीन होते हुए भी कुलीन माना जाता है, वह धनवान् मूर्ख भी पंडित कहा जाता है, वह श्रुतवान् अर्थात् शास्त्रज्ञ तथा मति-हीन होकर भी मतिमान् कहा जाता है, वह गुणज्ञ अर्थात् गुणों को नहीं जानता हुआ भी गुणग्राही कहा जाता है, वह ही वक्ता और दर्शनीय होता है । अधिक क्या कहें ? समस्त गुण स्वर्ण का आश्रय कर रहे हुए हैं ।

जैसे बीज के बिना अंकुर की उत्पत्ति की संभावना नहीं होती, वैसे ही मैं धन के बिना किसी व्यापार को करने के लिए समर्थ नहीं बन सकता हूँ और मूल के बिना जो दूसरों की सेवा आदि की जाती है, वह परतन्त्रपने से दुःख का ही कारण है । मैं उसे करने की इच्छावाला नहीं हूँ । अब मुझे अन्य कोई भी धन नहीं देगा, उससे ससूर के पास ही मिलने की संभावना है । ये अपनी पुत्री के स्नेह से मेरी इस दुःखी अवस्था को देखकर अत्यंत दुःखी होकर व्यापार करने के लिए धन देंगे ही। याचना से अवहेलना हेतु होने से जो कि मतिमंत पुरुष ससूर से कदापि धन की याचना नहीं करते, तो भी अब दूसरा उपाय नही होने से, ऐसा अनुचित भी करने योग्य ही है । जैसे कि-अधिक करने की इच्छावाले धन से विहीन पुरुषों के द्वारा अकार्य भी आचरणीय होता है, जैसे कि -त्रिभुवन के आधिपत्य की इच्छा से

त्रैलोक्यनाथ विष्णु ने भी शरीर को अत्यंत नीचे कर बलि से याचना की थी ।

इसलिए अपनी स्त्री से मिलने के बहाने से वहाँ जाकर ससूर से धन को प्रास कर और स्त्री को यहाँ लाकर जो व्यापार करुँ तो अच्छा होगा, इसप्रकार विचार कर प्रथम पत्नी को लाकर फिर गृह की दुर्दशा को दूर कर पश्चात् लक्ष्मी के उपार्जन से दारिद्र्य को दूर करना चाहिए इसप्रकार निश्चय कर शरीर मात्र सहायवाला और चरण मात्र वाहनवाला प्रयाण से उत्पन्न अत्यंत पसीने से लगे धूल के समूह से विलिस बना संपूर्ण शरीरवाला तथा नहीं संवारे और बिखरे बाल रूपी छत्रवाला, वृक्ष के पत्ते रूपी भोजन-पात्रवाला बना मैं अनुक्रम से बड़े कष्ट पूर्वक कौशाम्बी को प्रास कर ससूर के घर में गया था ! किंतु रंक के उचित वेषधारीपने से वहाँ किसी ने भी मुझे नहीं पहचाना । इतना ही नही, किन्तु द्वार पर गये मुझे प्रतिहारी ने रंक के समान अंदर प्रवेश करने से रोका ।

हे राजन् ! मैं आप से क्या कहूँ ? उस अवसर पर दुर्भाग्य-शाली और किंकर्त्तव्यता से मूढ़ बना मैं भिक्षुक वेषधारी होकर उनके साथ ही अंदर प्रवेश किया । तब सभी भिक्षुकों को भिक्षा देती मेरी पत्नी ने मुझे भी भिक्षा दी थी, किन्तु यह स्वामी है इस प्रकार नहीं जानती थी । चिर समय के बाद दर्शन से और रंक के उचित वेष से तथा भिक्षुकों के मध्य में रहे मुझे जब मेरी पत्नी ने नहीं पहचाना, तब मैं अपना परिचय इसे दूँ, इस प्रकार मैंने जब इच्छा की थी, तब भ्रूकुटि से विलक्षण मुख से शारदपूर्णचंद्र समान वह इस प्रकार मुझसे कहने लगी कि- हे भिक्षु ! भिक्षा प्रास कर भी तुम यहाँ चिर समय तक क्यों रुके हुए हो ? क्या करने की इच्छावाले हो ? अथवा क्या देख रहे हो ? तुम अपने स्थान पर चले जाओं ।

इस प्रकार उसके वचन को सुनकर, उसके घर से बाहर निकलकर और किसी समीप बाहर के प्रदेश में बैठकर मन में खेद को प्राप्त होते हुए अति दुःखित मनवाला बना मैं सोचने लगा कि- मेरा कैसा भाग्य उदय में आया है ? जो मैं सर्वत्र तिरस्कृत होता हुआ यहाँ पर भी मेरी पत्नी के द्वारा ज्ञान से अथवा अज्ञान से हतभाग्य-पने से अपमानित हुआ हूँ। अहो ! कर्म की कैसी गहन गति है ? जब पुरुषों का भाग्य जागृत बना विलास करता है, तब विपक्ष भी सम्मान करता है और सर्वत्र सुख का अनुभव करता है किन्तु उसके विपरीत होने पर हित भी अहित के समान आचरण करता है और स्थान-स्थान पर दुःख को ही भोगता है । क्योंकि त्रिभुवन को जीतनेवाले रावण के शुभावह भाग्य के विलास करते हुए सर्व देव भी सेवा में रहे हुए थे, पुनः जब उसी की अशुभ दशा आयी तब निर्भाग्य रावण को निज-बंधु बिभीषण ने भी प्रतिपक्षी होकर के त्याग किया था ! इसलिए मेरे द्वारा अब क्या आचरण करने योग्य है ? कितने ही दिन यही पर रुकूँ अथवा अपने घर पर चला जाऊँ ? अथवा स्त्री-लक्ष्मी इन दोनों के बिना घर जाकर भी क्या करुँगा ? उससे लक्ष्मी और स्त्री इन दोनों में से एक भी मेरे हाथ में प्राप्त होने पर ही मेरे द्वारा अपने घर पर जाना चाहिए अन्यथा देशान्तर में ही निवास श्रेयस्कर है, जैसे कि- उत्सुकता से कार्य सिद्ध नहीं होते है किन्तु नष्ट होते है । जैसे कि- जो पुरुष अत्यंत बड़े यश को प्राप्त करने की इच्छा करते है अथवा सर्वाधिक सुख की स्पृहा करते है या जिसे किसी प्राणी ने नहीं किया है उसे करने की इच्छा करते है, गृह-पुत्र आदि की उत्सुकता को छोड़कर उसकी सिद्धि के लिए प्रयत्न करते उन निरुत्सुक पुरुषों के अंक को प्राप्त वह सिद्धि अनायास से ही सिद्ध होती है, यह तात्पर्य है।

इस हेतु से मैं यही पर रुकूँ, जो यह कभी मुझे जानेगी तो

अभिष्ट की सिद्धि होगी, क्योंकि मेरी उस पत्नी ने मुझे चिर समय से नहीं देखा है, अतः क्रमशः चिर समय के बाद ही पहचानने में समर्थ हो । चिर समय से अदृष्ट आत्मीय जन को भी कोई शीघ्र ही पहचानने में समर्थ नहीं होता है । चिर समय से परिचित भी जन जो विस्मृत हुआ वह शीघ्र ही स्मृति-पथ पर नहीं चढ़ता है । इस प्रकार अनेक-विध चिंता रूपी सागर में निमग्न हुए और विधि के प्रातिकूल्य के योग से रंकोचित दशा को प्राप्त मुझे दिन का अवसान हुआ ! उससे मैं मानता हूँ कि मेरे दुःख को देखता हुआ सूर्य भी, मैं प्रातः उदय को प्राप्त करता हूँ और सायंकाल में अस्त होता हूँ, इस हेतु से तुम कर्म-गति को भोगो, लेश मात्र भी शोक मत करो इस प्रकार मुझे आश्वासित करते हुए के समान चरम पर्वत के ऊपर चढ़ने लगा था। सूर्य के अस्त हो जाने पर कान्ता विरह से उत्पन्न अत्यंत क्लेश के भय से चक्रवाक पक्षी भी मेरे साथ प्रियतमा के वियोग से अति दुःख का अनुभव करते हुए अत्यंत शब्द कर रहा था । उस अवसर पर वेश्या-राग के समान अस्थिर सन्ध्याराग सर्वत्र स्फुरायमान हो रहा था । किन्तु मेरे समान कमल-समूह विच्छायता को प्राप्त हो रहा था ।और मेरे दुःख के समान सर्वत्र अंधकार का समूह फैलने लगा था । मुझे देखकर मेरे विपक्ष के समान कैरवकमलों का समूह चंद्र के उदय प्राप्त होने पर अत्यंत हर्ष प्राप्त किया था । और संपूर्ण सार व्यापार तथा लोक-संचार को रोकनेवाली रात्रि भी मेरी दुर्दशा के समान शोभा रहित बनी थी । उदय को प्राप्त मेरे अशुभ कर्म के समान पापीयों को आह्लादित करनेवाला अंधकार का स्फुरण हो रहा था ।

उसके पश्चात् रात्रि में प्रथम प्रहर के व्यतीत हो जाने पर द्वार के ऊपर दोनों कपाट और अर्गल को देकर स्वस्थ मनवाला बना द्वारपाल सोने लगा । मैं भी कपाट से बाहर ही सोया हुआ था, किन्तु

चिन्तातुरपने से मुझे लेश भी निद्रा नहीं आ रही थी । फिर मध्य-रात्रि में वहाँ मेरी स्त्री आकर द्वारपाल से कहने लगी कि- हे आर्य ! मुझे कोई आवश्यक प्रयोजन है, इसलिए मैं वहाँ जाना चाहती हूँ, तुम शीघ्र ही द्वार को खोलो, जब तक मैं वहाँ से लौटूँ, तब तक अर्गल मत दो और अप्रमत्त होकर जागते रहो, इस कार्य में सिर को मत हिलाओ । इस प्रकार उसके कहने पर प्रचंडता को प्राप्त द्वारपाल उससे कहने लगा कि- अब अन-अवसर रात्रि में तुम कहाँ जाने की इच्छा कर रही हो ? और तेरा जो कार्य है, उसे कह क्योंकि इस समय चौर प्रमुख ही प्रचार करते है और कुलीन लोग घर के अंदर ही रहते है । इसलिए अब जो करना चाहती हो, उसे प्रभात में करना, अब वापिस लौट जाओं । क्योंकि अब रात्रि के समय में मैं समस्त रात ही जागने के लिए समर्थ नहीं हूँ ।

इस प्रकार उस द्वारपाल के वचन को सुनकर निरस्त की गयी, अति दुःखी, रोती हुई, मन में उत्पन्न हुए अत्यंत क्रोध रूपी अग्नि ज्वाला से जटिल, विच्छाय मुखवाली अपने स्थान पर लौट आयी । तब निद्रा-रहित मैं उन दोनों की उक्ति-प्रत्युक्ति को सुनकर सोचने लगा कि- जो स्त्री अर्ध-रात्रि में निरंतर किसी अन्य बाहर स्थान पर जा रही है, वह निश्चय ही व्यभिचारी है, उससे यह कहाँ जा रही है ? और क्या कर रही है ? इस प्रकार मेरे द्वारा जिस किसी भी उपाय से जानना चाहिए, इस तरह विचार कर और स्वस्थ होकर मैं थोड़ा सोने लगा । अब प्रभात के होने पर कमल के साथ ही प्रफुल्ल मनवाला बना मैं उठकर आकाश में सूर्य के समान जगत् की चेष्टा को और अपनी स्त्री की चेष्टा को देखने के लिए वस्त्र को धारण करता हुआ मैं भी तत्पर हुआ था ।

हे स्वामी ! उस अवसर पर आपके शत्रु गण के समान

अंधकार-समूह नष्ट होने लगा था। आपके राज्य में चोर के समान तारे भी तिरोहीत होने लगे थे। आपके उदय को प्राप्त होने पर आपके सेवक के समान, सूर्य के उदय होने पर चक्रवाक पक्षी अत्यंत आनंदित हो रहे थे। आपके शत्रु के समान उल्लू पलायन करने लगे थे। हे नाथ! तब आपके धैर्य के समान कनक-पर्वत के ऊपर उदय को प्राप्त हुए सूर्य की पंडित-जन ने पूजा प्रारंभ की। आपके सेवक के समान कमल-वन अत्यंत हर्षित हुए थे।

इस दिन भी मैं भिक्षा के लिए उसके घर में गया। भिक्षा को देती वह मेरी पत्नी मुझको पूछने लगी कि- हे भिक्षुक! तुम कौन हो? और तेरी कौन-सी जाति है? तब मैंने कहा कि- हे सुंदरी! मेरी तुम वणिक् कुल की जाति जानों। उसे सुनकर पुनः उसने कहा कि- हे भद्र! क्या तुम मेरे घर का द्वारपाल बनने की इच्छा करते हो? वह वचन भूख से आतुर मनुष्य को भोजन के समान और प्यास से आकुल बने व्यक्ति को शीतल और मधुर पानी के समान उसके चरित्र को जानने की इच्छावाले मुझे अत्यंत अच्छा लगा था। उसकी उक्ति के स्वीकार में रात्रि के रोष से पूर्व के रक्षक पर पिता के आगे किंचिद् दूषण आरोपण कर तभी पिता के द्वारा उस द्वारपाल को अलग कराकर उसके स्थान पर मुझे स्थापित किया। अपने इष्ट की सिद्धि के लिए उस दिन उसने मुझे यथा-इच्छित सरस भोजन कराया था क्योंकि लोक स्वार्थ को साधने की इच्छा से गधे को भी पिता कहता है। मुझे भी सरस भोजन और मधुर वचन आदि से वश किया। रात्रि में सकल लोक के सो जाने पर सर्व आभरण और वस्त्रों से विभूषित, प्रमुदित और मदन से आतुर बनी वह मोदक आदि सरस भोज्य पदार्थ से पूर्ण थाली को कर-कमल में धारण करती हुई मेरे समीप में आकर कहने लगी कि- हे भद्र! शीघ्र ही द्वार को

खोलो। मैंने भी तुरंत ही द्वार को उद्घाटित किया। उसके वचन से उसके द्वारा दीये थाल को ग्रहण कर मैं उसके साथ चला।

अब वह अपने वांछित जार स्वर्णकार के दूकान में आकर मेरे हाथ से उस थाल को लेकर मुझसे कहने लगी कि- तुम चले जाओ और द्वार का रक्षण करो। जब तक मैं वापिस लौट आऊँ, तब तक तुम जागृत ही रहो। तब उसके विश्वास के उत्पादन के लिए गृह अभिमुख जाकर उसके चरित्र के अवलोकन के लिए पुनः गुप्त रीति से वहाँ आकर स्थित हुआ। रात्रि के अंधकार की बहुलता से वही चोर के समान स्थित मुझे उसने नहीं जाना।

उस अवसर पर उसके संकेत से उसके आगमन को जानकर वह जार शीघ्र ही वहाँ पर आया। कपाट को खोलकर क्रोध के अतिशय से शरीर से कांपते हुए उस जार ने उससे इस प्रकार कहना प्रारंभ किया कि- अरे! संकेत करने पर भी तुम गत रात्रि में यहाँ पर क्यों नहीं आयी थी? क्या तुझे कोई अन्य बलवान्, तरुण, कामुक पुरुष मिला था? जैसे शंकर ने अति दुर्धर, कालकूट का सेवन किया था, वैसे ही मैंने तेरे लिए जागरण का सेवन किया था, किन्तु तूंने किसी बलवान् सरस युवा कामुक के साथ सुख पूर्वक चिर समय तक क्रीड़ा की है और निद्रा को प्राप्त हुई थी। उससे रे पापिष्ठे! चली जाओ, चली जाओ और शीघ्र ही यहाँ से दूर हटो, अपनी पीठ दीखाओ। अहो! बढ़ते हुए जिस तेरे स्नेह रूपी अग्नि के द्वारा मेरा अंग रूपी घर भस्मसात् किया गया है, उससे अब रहा। इस प्रकार से कहकर उसके सिर से वस्त्र खींचकर क्रोध से प्रज्वलित और व्यंतर से आविष्ट हुए के समान उस स्वर्णकार जार ने चपेटा दिया। उस प्रहार से अत्यंत जीर्ण सूत्र से गूंथा हुआ वधू-कालिक चूडामणिरत्न तूटकर नीचे गिर पड़ा। यह उसने नहीं जाना, परन्तु उछलता हुआ

वह रत्न मेरे चरण के नीचे आया । उससे मैं यह मानता हूँ कि मेरे भाग्य के उदय से आकृष्ट चिंतामणि ही आया है, इस हेतु से मैंने युक्ति से उस शिरोरत्न को ग्रहण किया ।

वह कुलटा स्वर्णकार के पैरों में गिरकर इसप्रकार से प्रार्थना करने लगी कि- हे नाथ ! कोप को छोड़ और मुझ पर प्रसन्न बन, यथास्थित मेरे वचन को सुन, अपराध रहित और तुम पर एक मानवाली मुझे व्यर्थ ही मारने के लिए क्यों प्रवर्त्तन कर रहे हो ? गत रात्रि में आने के लिए चल पड़ी थी, किन्तु द्वारपाल के द्वारा रोकी गयी बहुत बार प्रार्थना करने पर भी उस दुर्बुद्धिवाले ने कपाट को उद्घाटित नही किया । पहले वह मेरे अनुकूल था, भाग्य से अब ही प्रतिकूलता को प्राप्त हुआ है । विधि के समान भाग्य के प्रतिकूल हो जाने पर सदा ही अनुकूल होता हुआ भी वह पुरुष विपक्षता को ही प्राप्त हुआ है । उस अवसर पर जल में डाली हुई हथिनी के समान अथवा जाल में पड़ी हिरनी के समान जिस अकथनीय दुःख का अनुभव किया था, उसे विपक्ष भी कभी अनुभव न करे । उस दोष से ही प्रातः काल में उसका कोई दोष पिता के आगे कहकर और उसे निकालकर उसके स्थान पर किसी अन्य वैदेशिक और अनुकूल द्वारपाल को किया है । उससे ही तेरे दर्शन के विरह से आकुलित और अत्यंत दुःखित बनी मैं बड़े कष्ट से दिवस को व्यतीत करती हुई मदन से पीड़ित हुई तेरे समीप में आयी हूँ । हे प्राण-प्रिय ! इसलिए ही मुझ अन-अपराधिनी को स्वीकार करो, तिरस्कार मत करो । जैसे कि- भक्ति से अर्पित कीये हुए मोदकों को प्रसन्न मनवाला गणेश ग्रहण करता है, वैसे ही प्रेम से लाये इन सरस मोदकों को तुम ग्रहण करो। मुझ पर संशय मत करो, क्योंकि स्वप्न में भी मैं तेरे सिवाय अन्य किसी की भी इच्छा नहीं करती हूँ । उससे तुम सौम्य दृष्टि से मुझे

देखकर पवित्र करो और दर्भ के समान मेरे दुःख का छेदन करो । इस प्रकार स्नेह से युक्त उसके वचन को सुनकर वह जार स्वर्णकार उस पर प्रसन्न हुआ और उसके द्वारा लाये मोदकों से भरे हुए थाल को सहर्ष स्वीकार कर उससे कहने लगा कि- हे सुंदरी ! मैंने अज्ञान से जो तुम्हारा तिरस्कार आदि किया है, उसे तुम क्षमा करो ।

हे राजन् ! अपनी स्त्री के इस आचरण को देखकर मन में वैरागी बनकर सखेद मैं स्व-स्थान प्रति चला और इस प्रकार विचारने लगा कि- रे जीव ! तुम जिसकी इच्छा करते हुए यहाँ पर आये थे, उसने दास किया है और जार का सेवन कर रही है । अहो! स्व-प्रेयसी को भोगते हुए जार को मारने के लिए क्यों शक्ति को धारण नहीं करते हो ? और वैसे करने के लिए क्लीब के समान बनते खुद की हिंसा क्यों नहीं करते हो ? रे दैव ! मेरे पिता आदि परिवार और धन-गृह आदि का विनाश कर तथा उससे उत्पन्न असह्य कष्ट दीखाकर क्या तुम संतुष्ट नहीं हुए हो ? जो अब निज स्त्री के पराभव से उत्पन्न यह दुःख दिखा रहे हो । अहो ! यह मेरी स्त्री सद्वंश में उत्पन्न होकर भी कैसे कुलटा हुई है ? अथवा विष्णु ने जो उर्वशी की रचना की है, क्या वह भी देव-नगर में देवों की वेश्या नहीं हुई है ? तब यह मेरी पत्नी कुलटा हुई है, वहाँ कौन-सा आश्चर्य है ? मेरे ही दोष से कुलीन होकर भी यह स्त्री कुलटापने को और लक्ष्मी का विनाश हुआ है, क्योंकि दोनों की उपेक्षा कर मैंने बारह वर्ष गणिका का सेवन किया था, यह समस्त ही मेरा ही दोष है । अथवा मुझसे वियोगी होकर भी मेरे स्त्री का यह आचरण योग्य नहीं है, जैसे कि- सूर्य विकासी कमलिनी सूर्य के अस्त होने पर भी कदापि चन्द्र की इच्छा नहीं करती है । यह लज्जा रहित होती हुई मेरे जीवित होने पर भी निरंतर जार के साथ क्रीड़ा कर रही है । यह केवल इस जार के द्वारा

ही नहीं उपभोग की जाती है, किन्तु अनेक पुरुषों के साथ क्रीड़ा करती होगी, इस प्रकार अनुमान किया जाता है, क्योंकि जो स्त्री पति का अतिक्रमण कर अन्य पुरुष के साथ क्रीड़ा की इच्छा को वहन करती है, वह स्त्री एक पुरुष से ही तृप्त नहीं होती है, किन्तु प्रति-दिन नये-नये युवा कामुक के साथ ही संभोग की इच्छा करती है। इसलिए ही अनाचार रूपी पानी की नीक तुल्य यह स्त्री सद्वंश में उत्पन्न हुई कैसे कही जाय ? क्योंकि कुल-वधूआँ अवश्य ही सदाचारशाली और शील की पालन करनेवाली होती है। किसी भाषा-कविता के जानकार ने कहा है कि-

खान रु पान विधान निधान, निमग्न सदा सुख की तरनी में;
यौवन जोर भयो तउ, कन्त मिल्यो नहिं चूक परी करनी में।
रूप की राशि, प्रकाशित देह, नहीं तिय ता सम निरजरनी में;
तौ पुनि धीरज धर्म तजी नहिं, धन्य प्रवीन सती धरनी में।।

इसमें एक भी कुलीनता का लक्षण नहीं है। इस कारण से अनार्य इस स्त्री का संगम आज के बाद श्रेयस्कारी नहीं लग रहा है, कारण कि भुजंगी के समान दुराचारिणी स्त्री मृत्यु का कारण होती है। लघुत्व के कारण से जो कि मेरा यह वृत्तान्त तथा इसका यह वृत्तान्त अब किसी के आगे नहीं कहना चाहिए तथा मेरे दुःख के स्मृति की कारण बनी हुई स्थिति भी यहाँ शोभनीय नहीं बन सकती है और स्व-दुःख का स्मरण कराने से अब अपने नगर में गमन करना भी मुझे उचित नहीं लग रहा है किन्तु भाग्य से आज ही मुझे चूड़ामणि मिला है, उसे ही बेचकर और भोजन-सामग्री का संपादन कर मैं देशान्तर ही चला जाऊँ। इसप्रकार निश्चय कर मैं वहीं पर सो गया।

प्रातःकाल में किसी अन्य स्थान में जाकर और उस चूड़ामणि को अच्छी तरह से देखकर तथा पहचान कर मैं सोचने

लगा कि- अहो ! यह वही चूड़ामणि है जो पहले मेरी माता के मस्तक पर शोभ रहा था । यह वही चूड़ामणि है जो कुल-परंपरा से सुरक्षित किया हुआ आज मेरे द्वारा प्राप्त किया गया है । माता-पिता की शिक्षा भी इस प्रकार स्मृति-पथ में आने लगी थी कि-भ्रम से भी पुत्री को यह चूड़ामणि मत देना, किन्तु वधू को ही देना । उस कारण से भिक्षा से उद्विग्न चित्तवाला और दुर्दशा को प्राप्त मैं इस चूड़ामणि को तोड़ डालूँ, ऐसा निश्चय कर अश्रु से पूर्ण नेत्रवाला जब मैंने उस चूड़ामणि को तोड़ा तब ही उसके मध्य में से उत्तम अक्षर-माला से युक्त एक पत्र मिला । विस्मय से व्याप्त चित्त से युक्त प्रफुल्ल नयनवाला बना मैं शीघ्र ही उस पत्र को लेकर तथा पढकर इस प्रकार से जाना कि- मैंने घर के अंदर ही छोटी कोठी में बाये भाग में चार करोड़ दीनारें रखी है । इस प्रकार पढ़कर महा-सिद्धि के पाठ से सिद्ध होनेवाले मंत्र के समान, वचन और मन से अगोचर तथा असीम अत्यंत हर्ष प्राप्त किया था । जो कि तब वहाँ पर मेरा आगमन मुख्यपने से पहले तपस्वी के समान क्लेश-अतिशयकारी हुआ था, परन्तु उत्तर-काल में निरतिशय सुखदायक ही हुआ और कदापि यह चूड़ामणि पुत्री को मत देना किन्तु वधू को ही देना, इस प्रकार माता-पिता की जो बार-बार शिक्षा थी, उसके भी तत्त्व को तब ही जाना था ।

उस अवसर पर चूड़ामणि को बेचकर और भोजन-सामग्री एकत्रित कर बड़े उत्साह के साथ चंपा नगरी के प्रति चला । क्रम से शीघ्र ही उस नगरी में अपने घर आया । उसी रात्रि में पत्र के अंदर लेख के अनुसार मन में साहस कर पृथ्वी को खोदने लगा । मैं निर-आलस होकर खोदते हुए उत्पन्न अपने सुकृत-पुंज के समान उस निधि को देखी । जैसे कि- जीने की इच्छावाला प्राणी मरण को प्राप्त होते हुए प्राण को प्राप्त करने के समान और दोनों नेत्रों से विहीन

मनुष्य आँखों की प्राप्ति के समान उस निधि को प्राप्त कर मैं निरवधि आनंद को प्राप्त करने लगा । उस निधि से आकर्षित बनी लक्ष्मी के प्रभाव से मैंने शीघ्र से विशिष्ट घर, वस्त्र और आभरण कीये । और अधिक क्या कहूँ ? तब अत्यंत शोभायमान और देवालय को भी जीतनेवालें मेरे भवन हुए थे । इस प्रकार अनेक गगन-चुम्बी सात-भूमिवाले और पाँच भूमिवाले तथा अनेक विचित्र चित्रों से चित्रित कीये हुए, देवेन्द्र भवन की उपमावाले और विविध दास-दासी गणों से सुसेवित, परम-ऋद्धिवाले ऐसे अत्यंत उज्ज्वल भवन कीये । तथा अनेक मद-स्रावी हाथियों के समूह, बहुत उत्तम सुलक्षणवाले घोड़े और रथ घर में बसायें ।

अब एक दिन बड़े स्वरूपवाले लेखक-गणों से घेरा हुआ और इन्द्र के समान कितने ही सुलक्षणवाले घोड़े पर चढ़े परिवारों से अनुसरण किया जाता, श्वेत और अत्यंत वेगशाली, ऊँचे घोड़े पर बैठा, तथा सेवक वर्गों से सिर के ऊपर अत्यंत बड़े मयूर-पींछ के छत्र को धारण किया जाता और मद-स्रावी गजराज जैसे गुंजन करते मद के गंध में लोलुप भँवरे के समूह के समान बन्दि-जनों के द्वारा स्तुति किया जाता, महा-मूल्यवान् और सुंदर रत्नों से जड़े स्वर्ण आभरण और दिव्य वस्त्रों से शोभायमान होता तथा सैंकड़ों दासों से अनुसरण किया जाता हुआ, श्रेष्ठ लक्ष्मी की शोभा को धारण करता हुआ और मार्ग में विविध वाद्यों के आडंबर से आकाश को बधिर करनेवाला कौशाम्बी नगरी में जैसे विष्णु, लक्ष्मी के गृह के समान मैं ससूर के घर जाने लगा । जैसे देव कल्पवृक्ष के समीप जाते हैं वैसे ही मेरा आगमन सुनकर मेरे साले प्रमुख सम्मुख आये और मेरा अधिक सम्मान करते हुए बड़े महोत्सव के साथ नगर में प्रवेश कराया । वे इस प्रकार कहने लगे कि- हे जीजाजी । आपने आत्मीय

भी हमकों इतने दिन क्यों भूला दिया ? हमारे नेत्रों को कौमुदी के समान आपका यह दर्शन इतने वर्षों से कैसे शिशिर-ऋतु से ढंका हुआ है ? जैसे मयूर मेघ को देखने के लिए उत्साहित होते हैं, वैसे ही आपको देखने की उत्सुकतावाले आज आप श्रीमान् को देखकर हम आनंद-सागर में निमग्न हुए है । उनके वचनों को सुनकर मैंने सोचा कि- अहो ! यह सर्व भी सत्कार आदि मेरा नहीं हो रहा है किन्तु लक्ष्मी का ही हो रहा है क्योंकि पूर्व रंक के रूप से यहाँ आये मुझसे किसी ने कुछ भी नहीं पूछा अथवा परिचय भी नहीं लिया था, और अधिक क्या कहूँ ? प्रतीहार ने भी मुझे अंदर प्रवेश करने से रोका था । अब यें ऐसा सत्कार कर रहे हैं । तत्पश्चात् उन सभी ने बड़े आदर से मुझे विविध दिव्य सरस स्वादिष्ट पक्व-अन्नादि का भोजन कराया । उसके बाद मैं अपने साले-वर्गों से अनेक विध सरस और श्लेष सहित का आलाप करते हुए क्रीड़ा करने लगा, क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष शास्त्र की चर्चा अथवा काव्य- नाटक आदि के विनोद से समय को व्यतीत करते हैं । कहा गया है कि-

काव्य और शास्त्र के विनोद से बुद्धिमंतों का समय व्यतीत होता है और मूर्खों का व्यसन, निद्रा अथवा कलह से समय व्यतीत होता है ।

मैंने दुराचारिणी और मेरे मन से बाहर की हुई उस मेरी पत्नी को दृष्टि से भी नहीं देखा क्योंकि मन-वशवर्ती हुई लोगों की दृष्टि गिरती है । जहाँ मन रागी होता है, रोकी गयी दृष्टि भी वही जाती है और जहाँ मन विरागी होता है, उस पर दृष्टि छोड़ने पर भी वह नही जाती । राग के विद्यमान होने पर विशिष्ट भी रूप दोनों नेत्रों को अमृत-अंजन के समान होता है, अन्यथा वही रूप लवण-अंजन के समान उद्वेगकारी बनता है । रात्रि के प्रथम प्रहर के व्यतीत होने पर

सुसज्जित की हुई शय्या के ऊपर निद्रा से प्रायः कर आँखों के मिल जाने से जब मैं सोने लगा तब अंदर विरागिनी और बाहर से अनुरागिनी सुंदर वस्त्रोंवाली तथा समस्त आभरणों को धारण की हुई वह मेरी पत्नी आकर सामर्ष मेरे दोनों चरणों का मर्दन करने लगी। तब जागते हुए के समान बने मैंने उसे पूछा कि– तुम कौन हो? और यह क्या कर रही हो ? उसने कहा– मैं आपकी पत्नी हूँ और आपके चरण–कमलों की भक्ति कर रही हूँ। पुनः मैंने कहा कि– हे सुंदरी ! यह तूंने सुंदर नहीं किया है, जो स्वप्न को देखते हुए मुझे जगाया है । तब उसने कहा कि– हे प्राण–नाथ । अब आपने जिस स्वप्न को देखा है, उसे आप मुझे भी कहो क्योंकि मैं आपकी प्राण–प्रिया हूँ और मुझसे आपको अवाच्य कुछ भी नहीं है । तब मैंने कहा– जो इस प्रकार है तो सावधानता से सुनो –

मैं तेरे घर पर द्वारपाल हुआ था और तूंने मुझसे मोदकों से भरे थाल को उठवाया था, उसके बाद मैं भी तुम्हारे पीछे उस थाल को लेकर चला था, और जहाँ पर तेरा जार रहता है, तूं उस स्वर्णकार के दूकान पर गयी थी, वहाँ जाकर तूंने मुझे वापिस लौटाया और कहा जब तक मैं आती हूँ तब तक तुम जागते हुए रहना, उसके बाद उस स्वर्णकार ने बड़े क्रोध से – अरे ! गत रात्रि में संकेत कर तूं यहाँ क्यों नहीं आयी थी ? इस प्रकार कहकर तुझे चपेटा दिया । उसके चपेटा देने से तेरे सिर से नीचे गिरे चूड़ामणि को जब मैं लेने लगा, तूंने तब ही मुझे जगाया । अर्ध देखा गया स्वप्न भविष्य में महा–लाभकारी होगा, इसप्रकार मुझे लग रहा है । उससे तूंने बीच में जो मुझे जगाया है, वह अच्छा नहीं हुआ है । महा–ईर्ष्यालु मैंने स्वप्न के बहाने से वह समस्त ही सूचन किया । उसने भी जाना कि मेरे समस्त दुश्चरित्र को यह जानता है । मर्म–वेधि मेरे वाक्य रूपी अति–तीक्ष्ण बाण से

विदीर्ण हृदयवाली बनी लज्जा-भय को प्राप्त हुई तत्काल ही केले के स्तंभ के समान भूमि ऊपर गिरी प्राण रहित हुई । जिससे कि पंडित-जन कहते हैं कि मर्म-वाक्य महा-अनर्थ को उत्पन्न करता है । उसके बाद मैंने नीचे गिरि हुई, अधो-मुखवाली, अवयवों से अचेष्टावाली, उच्छ्वास से रहित, तन्द्रा-नेत्रवाली उस स्त्री को प्रकाश में लाकर और देखकर यह मर चुकी है, ऐसा निश्चय किया । मैं भी तभी क्रोध के आवेश से उल्लसित हुए अति-वीर्य और धैर्यवाला अकेला ही जैसे सिंह गाय के समान प्राण-रहित उसे उठाकर गृह के द्वार पर ले आया । वहाँ ग्रामान्तर से आये ज्ञातीय-जनता की बहुलता से अनर्गल और रक्षक रहित द्वार को देखा । तब धीरे से कपाट को खोलकर लोगों से नही पहचाना जाता हुआ मैं उस जार स्वर्णकार के दूकान में आकर उसे दूकान के द्वार पर वैसे स्थापित किया जैसे कि नीचे न गिरे और पहले आकर जिस संकेत को वह करती थी, उसी संकेत को कर, जिस प्रकार से कोई भी न जाने वैसे कितना ही दूर जाकर खड़ा हुआ ।

वह जार भी तभी पूर्व के समान संकेत से उसके आगमन को जानकर और शीघ्र से कपाट को खोलकर हँसते हुए यह कहने लगा कि-अरे ! अब अर्ध-रात्रि के समय में मेरी निद्रा को भंग करने के लिए क्यों आयी हो ? अहो ! तेरी कैसी धृष्टता है ? और स्नेह में कैसी तेरी गाढ निष्ठता है ? यें दोनों ही वचन के अगोचरता को प्राप्त हुए जाने जाते हैं । तुम अंदर क्यों नहीं आरही हो ? कुपित बनी हुई के समान चिर समय से तुम बाहर क्यों खड़ी हो ? पूर्व में कपाट के उद्घाटन करने पर कभी विलंब नहीं करती थी, आज क्या हुआ है, जिससे तुम नहीं बोल रही हो । क्या तेरे मन में रोष उत्पन्न हुआ है ? मेरे हास्य वचन को तुम सहन करो । मेरे दूकान के मध्य में आकर मेरे समीप

गृह के अंदर क्यों नहीं आ रही हो ? इस तरह अनेक प्रकार से उस स्वर्णकार जार ने कहा, फिर भी शवपने को प्राप्त जब वह नहीं आयी, तब वह आओ इसप्रकार कहते हुए उसके वस्त्र को खींचने लगा। प्राण-रहित बनी वह स्त्री काष्ठ-मूर्त्ति के समान भूमि के ऊपर गिर पड़ी। अकस्मात् मृत बनी उसे जानकर वह मन में अत्यंत विस्मय को धारण करने लगा। मदन के बाण-समूह की पीड़ा को नहीं सहन करती हुई क्या यह स्त्री मरण को प्राप्त हुई है ? अथवा क्या किसी दुष्ट-सिंह के द्वारा कदर्थित की गयी पञ्चत्व को प्राप्त हुई है ? इस प्रकार गद्-गद् स्वर से कहते हुए दूकान के अंदर उस शव को ले जाकर और अति-गंभीर खाई खोदकर वहाँ उस शव को स्थापित कर और निधान के समान पुनः मिट्टी से ढंककर चिर-कालिक और अति-घनिष्ठ उसके प्रेम को बार-बार स्मरण करते हुए वह स्वर्णकार चिर समय तक रोते हुए शोक करने लगा। उस जार स्वर्णकार के सकल वृत्तांत को देखकर और वापिस अपने स्थान पर आकर यह समस्त ही मैंने अपने मित्र से कहा। उस मित्र ने भी यह संपूर्ण वृत्तांत उस स्त्री के पिता से कहा। इस प्रकार सर्वत्र अन्तःपुर में वह वार्त्ता प्रसारित होने लगी, इसलिए उन सभी के मन में बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई, किन्तु महान् पुरुषों को यह हानिकारी है, इस प्रकार विचार कर जैसे समुद्र वाड़वा-अग्नि के समान उस स्त्री के पिता ने उस वार्त्ता को गोपनीय रखी। उससे अन्य किसी ने इसे नहीं जाना। दुःख की हेतु बनी यह वार्त्ता उसके गृह में समस्त लोगों में व्याप्त बनी, क्योंकि लहसन के गंध के समान गुप्त की हुई भी अनाचार की वार्त्ता गुप्त नहीं रहती है किन्तु प्रकाशता को प्राप्त होती है।

चिन्तित बने इनके घर में मेरे द्वारा नहीं रहना चाहिए ऐसा निश्चय कर खेदित होते हुए जब मैं स्व-नगरी के प्रति जाने की इच्छा

करने लगा, तब मुझे वरने की इच्छावाली, दोनों हाथ रूपी कमलों में चंपकमाला को धारण करती हुई चंपकमाला नामक मेरी पत्नी की छोटी बहन आकर मेरे आगे स्थित हुई और अत्यंत हर्ष से मुझ पर कटाक्ष-माला को छोड़ती हुई अति-शीघ्र से उसने मेरे गले में उस वर-माला को पहनायी । वह इस प्रकार कहने लगी-हे महा-भाग्यशाली ! आपको भर्त्ता करने के लिए मैं यहाँ आयी हूँ । इसलिए आप मेरे भर्त्ता बनो, मेरी प्रार्थना को विफल मत करो । क्योंकि महान् पुरुष किसी की भी प्रार्थना को भंग करने के लिए मन में डरते ही है। उसके बाद मैंने ऐसा कहा कि- हे सुंदरी ! जो तेरी बड़ी बहन और मेरी पत्नी थी, उसके स्वभाव को जानता हुआ मैं तुझे कैसे स्वीकार करुँ? क्योंकि तुम उसी की छोटी बहन हो और उसके अनुरूप प्रकृतिवाली ही होगी, इस प्रकार मैं निश्चय कर रहा हूँ । वह सुनकर उसने पुनः कहा कि- हे महा-भाग्यशाली ! ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं है कि समस्त बहनें भी प्रकृति-गुण आदि से तुल्य ही हो, अथवा सभी भाई भी समान प्रकृतिवाले नहीं होते हैं । कहा गया है कि-

एक उदर से उत्पन्न और एक ही नक्षत्र में जन्म प्राप्त हुए भी बेर-पेड़ के काँटे के समान तुल्य आचार-विचारवाले और सदृश स्वभाववाले नही होते हैं ।

हे मतिमान् ! दूसरी बात यह भी है कि इस जगत् में फल, पुष्प, पत्र, पुरुष, हाथी, घोड़े, पत्थर और कमल प्रमुख एक स्थान में उत्पन्न होकर भी विविध प्रकृतिवाले होते है । जो उनसे अन्य भी बहुत पदार्थ प्रकृति से भिन्न देखे जाते हैं तो स्त्री-जाति में वह प्रकृति कैसे भेदवाली न हो ? किन्तु होती ही है- ऐसा आप निश्चय से जानें। गुणों के प्रवास- संवासों से अर्थात् उसके अवगुण के संपर्क से अथवा चिर परिचय से जैसे वह दुःशीला थी, वैसे ही उसकी यह

छोटी बहन भी होगी, ऐसा आप संशय मत करो। क्योंकि सज्जन जन दुर्जनों की गोष्ठी में बैठता हुआ भी और उनके परिचय को करता हुआ भी लेश भी उनकी दुर्जनता को नही भजता है। जैसे कि आजन्म बड़े सर्प की फणा में रहा हुआ मणि उसके समान दुःस्वभाववाला और दूसरों को पीड़ाकारी नहीं होता है। जो कि मैं उसकी छोटी बहन हूँ, तो भी उसके समान स्वभाववाली होकर स्वप्न में भी उसके समान अकृत्य का आचरण नहीं करुँगी। अथवा जैसे किसी कूएँ में गिरे, आत्मीय जन को देखकर भी मतिमान् पुरुष उसके पीछे नहीं गिरता है, वैसे ही मैं भी उसका अनुकरण करने की इच्छा नहीं करती हूँ। इसलिए ही दुराचारिणी मेरी बड़ी बहन को देखकर उसकी छोटी बहन मुझे भी आप मत छोड़ो। क्या दूध से विरक्त बना कोई दहि को छोड़ता है ? इस विषय में निर्लज्ज हुई के समान मैं अधिक क्या कहूँ? आपके गले में मेरे द्वारा जो चंपकमाला स्थापित की गयी है, वह ही मेरे सतीत्व का बोध करायगी। जब तक मेरा शील अखंडित रहेगा तब तक आपके कंठ में यह माला नव-निर्मित हुई के समान आपको प्रसन्न करती हुई सुषमा को धारण करेगी, लेश-मात्र भी नहीं मुर्झायगी। और जब ही मैं मन से, वचन से अथवा काया से निज शील को मलिन करुँगी, तभी मेरे द्वारा अर्पित की हुई और आपके कंठ में रही यह माला मुर्झायगी। जब यह माला मुर्झायगी, तब ही मेरा सतीत्व भी खंडित हुआ जाने, अन्यथा नहीं, इसे आप सत्य जाने।

इस प्रकार उसके वचनों के श्रवण से प्रभूत आश्चर्य से युक्त हुआ मैंने उसकी प्रार्थना को अंगीकार किया। तत्पश्चात् शुभ दिन के आने पर बड़े महोत्सव पूर्वक पिता ने उस चंपकमाला नामक कन्या का मेरे साथ विवाह किया। पिता के द्वारा अर्पित और कौतुक-उत्पादी दास-दासी आदि और गज, घोड़े आदि समृद्धि सहित सत्-

शील से युक्त उस विवाहित कन्या को अपने गृह ले आया । वह यही चंपकमाला है जो उसके द्वारा अर्पित की गयी उसके अखंड शील को सूचन कर रही है और आज भी नूतन गूंथी हुई के समान दिखाई देती मेरे कंठ में चमक रही है । बारह वर्ष व्यतीत होने पर भी आज पर्यंत उसके सतीत्व के माहात्म्य से देवता से अर्पित की गई के समान शुष्कता को प्राप्त नहीं हुई है, किन्तु तात्कालिक निर्मित के समानअत्यंत शोभायमान हो रही है ।

हे राजन् ! इस आश्चर्य को आप असंभव न मानो, क्योंकि शील के अनुभाव से ही सीता के परीक्षा-काल में जलाने में तत्पर अग्नि भी पानी के समान शीतल बनी थी । शील के प्रभाव से कमलावती के छेदे गये दोनों हाथ लोक के समक्ष ही फिर से प्राप्त हुए थे । शील के माहात्म्य से ही राजा आदि लोगों के देखते सुदर्शन श्रेष्ठी की शूलि स्वर्ण-सिंहासन बनी थी । महासती दमयन्ती ने सुकी हुई नदी से पानी को प्रकट किया था । शील की महिमा से शीलवती ने भी अपने भर्त्ता को अर्पित कीये कमल को प्रफुल्लित किया था । कच्चे धागे के योग से सुभद्रा ने चालिनी के द्वारा कूँए से जल को बाहर खींचा था । वैसे मेरी स्त्री के सत्-शील के माहात्म्य से आपकी अत्यंत निर्मल सत्कीर्ति के समान मेरे कंठ में स्थित यह माला कभी शुष्क नहीं होती है । जगत् में शील का प्रभाव वचन की गोचरता को प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि शीलशालियों के वचन को अचेतन भी यह माला उल्लंघन करने के लिए समर्थ नही होती है तो चेतनवंतों की क्या बात है ? इसलिए ही कहते हैं कि-

जैसे खानों में वज्र सीमा है, वैद्यों में धन्वन्तरि सीमा है, दाताओं में कर्ण, देवताओं में लक्ष्मी, पर्वों में दीपावलि, सकल अक्षरों में ऊँकार, गुरुओं में आकाश, स्थिरों में पृथ्वी, नीतिशालियों

में राम वैसे ही व्रतों में ब्रह्मचर्य सर्वोत्कृष्ट है ।

और अन्य यह भी है कि-

इस जगत् में शील ही प्रधान है, कुल प्रधान नहीं है । शील बिना कुल से क्या प्रयोजन ? अर्थात् व्यर्थ ही है । क्योंकि नीच-कुल में जन्म लेकर भी अनेक धीर-पुरुष शील का परिपालन कर स्वर्ग को प्राप्त हुए है, इसलिए शील की ही प्रधानता है, अन्य किसी की भी नहीं, ऐसा आप तत्त्व को जाने ।

हे राजन् ! मैंने आपके आगे इस माला के नहीं मुर्झाने का जो यह कारण कहा है, उसे आप सत्य जाने क्योंकि स्वामी के आगे झूठ बोलना अनर्थ का कारण होता है, इसलिए आश्रित पुरुषों के द्वारा सत्य ही बोलना चाहिए । इस प्रकार सार्थवाह के द्वारा कहे गएँ वचन को सुनकर विक्रमार्क राजा हँसकर उससे कहने लगा कि-हे सार्थवाह ! यदि तुम शील के प्रभाव को जानते हो तो स्वयं ने ऐसा अनाचार क्यों किया ? अर्थात् पर-स्त्री गमन से अपने शील को क्यों तोड़ डाला ? ऐसा ज्ञान तुझमें विद्यमान होते हुए तूंने महा-पाप जनक, चिर-कालिक दुर्गति-प्रदायी वैसे अकार्य में क्यों प्रवर्तन किया ? कर-कमल में दीपक धारण कीये जाने पर क्या दृष्टिमान् पुरुष खाई में गिरता है ? अर्थात् नहीं गिरता है । दक्षिणवंत पुरुषों का वही ज्ञान अवश्य फलेग्राहि कहा जाता है, जैसे कि-

जिस अंकुश से महावत मद से मत्त बने हाथी को भी वश करता है, वैसे ही प्रमादी और उन्मार्गगामी अपनी आत्मा को यदि स्व-वश में करे, तभी धीर-पुरुषों का भी ज्ञान फलवंत हो । अथवा मतिमान् पुरुष भी रागान्ध होकर जानता हुआ भी यदि ऐसे अकार्य को करे, तो वह भी ऐसे घटित होता है, जैसे कि- विवेकी जन भी नरक-जनक ज्ञान दशा में भी उत्कट इच्छा से अन्याय में प्रवर्त्तन

करते हुए सत्-असत् का विवेक करने में समर्थ नहीं होते हैं । जैसे कि-

एक दिन किसी सुंदर वन में शिव समाधि में रहा हुआ था । वही कितनी मानुषी युवतियाँ क्रीड़ा करने के लिए आयी हुई थी । उन सुंदरीयों को देखकर समाधि को समाप्त कीये बिना ही शिव काम-विकार से युक्त बना उनको आकाश में ले जाकर उनके साथ क्रीड़ा की और अंत में पार्वती ने उनको नीचे गिराया और शिव को समाधि में स्थापित किया था । विष्णु ने भी छल कर किसी अत्यंत बलवान् जलन्धर असुर की पुत्री का उपभोग किया था, पश्चात् उसने विष्णु को शाप दिया । एक दिन इन्द्र ने भी रूपान्तर के बहाने से गौतम-ऋषि की पत्नी अहल्या का उपभोग किया था । उसे जानकर गौतम ने इन्द्र को शाप दिया, उससे महेन्द्र के हजार हाथ भग्नता को प्राप्त हुए । कोई एक अत्यंत युवा तपस्वी किसी मंदिर में अकेला रहता था। यह जितेन्द्रियपने से सर्वत्र प्रख्याति को प्राप्त हुआ था । दैव के योग से एक बार कोई एक मनोहर आभरण और वस्त्रों से विभूषित स्त्री उसके आगे चली । उसके रूप से मोहित बना काम से परिपीड़ित संपूर्ण शरीरवाला तपस्वी उसके पीछे चलने लगा । जब वह अपने घर आयी, तब उस योगी ने उससे रति की याचना की । उसकी याचना को सुनकर जब वह द्वार को बंद करने लगी, तब वह बल से निज मस्तक के द्वारा कपाट को अनर्गल करने का प्रयत्न करने लगा। उस अवसर पर उस स्त्री ने वेग से वैसे कपाट को बंध किया, जिससे कि उसके मध्य में गिरा तपस्वी का सिर कपाट के संघात से तत्काल ही विच्छिन्न हुआ और वह शीघ्र ही मरण को प्राप्त हुआ । यदि ऐसे योगी, जितेन्द्रियों के मन स्त्री के मुख-कमल के अवलोकन से काम-किंकरता को प्राप्त हुए हैं, तो पामर मनुष्यों की क्या बात हैं ?

इसलिए तुझे अर्पित की गयी और तुझ पर अनुरागिनी इस स्त्री को अंगीकार करो । जैसे तूंने धारण की गयी अपनी स्त्री को उसके इष्ट पुरुष को अर्पण की थी, वैसे ही मैं भी तुझ पर रागिनी, अभीष्ट और चिर समय से उपभोग की गयी इस स्त्री को तुझे दे रहा हूँ। तुम शंका रहित होकर उसे ग्रहण करो, क्योंकि परस्पर अनुरागिनी और नव यौवन से युक्त तुम दोनों को मैं परस्पर विरह से उत्पन्न दुःख कैसे दूँ? क्योंकि इष्टों का वियोग सभी को असहनीय ही होता है । मतिमान् पुरुष के द्वारा भी स्त्रियों का चरित्र दुःख से ही जाना जा सकता है, इस प्रकार पंडित-गणों के द्वारा कहा गया है, उसकी परीक्षा करने के लिए मैंने इससे विवाह किया था, न कि क्रीड़ा करने की इच्छा से । मैंने इसके साथ विवाह के समय में ही अपने हृदय में निश्चय किया था कि जो यह किसी पुरुष के साथ व्यभिचार करेगी, तो मैं इसे उस जार पुरुष को ही दूँगा । यह चातुर्य से अन्य पुरुष के साथ कैसे मिलती है? इस प्रकार देखने की इच्छा से दूसरों के द्वारा अगम्य एक स्तंभवाले महल में उसे स्थापित किया और जिस-जिस की इसने इच्छा की थीं वह समस्त ही मैंने पूर्ण किया । फिर भी सभा में उस पंडित ने जो कहा था कि- हे राजेन्द्र ! आज तक आपने स्त्री-चरित्र बोधिनी कला नहीं जानी है, इस प्रकार उसकी उक्ति को सत्य साबित करने के लिए जैसे विष्णु ने लक्ष्मी को कमल के मध्य में स्थापित की थी, वैसे मैंने उस स्त्री को ऊपर कहे हुए भवन में स्थापित की । कहा गया है कि-

जल-तरंगों के साथ बालकों के समान धूलि-क्रीड़ा करने से यह लक्ष्मी चंचल है, इस प्रकार के आशय से विष्णु के द्वारा एक नाल रूपी स्तंभवाले कमल रूपी महल के मध्य में छोड़ी गयी भी यह चतुर सिन्धु-सुता अर्थात् लक्ष्मी ब्रह्म-मुहूर्त्त में चन्द्र के किरणों के साथ बाहर निकलती है और सायंकाल में सूर्य के किरणों के साथ वापिस

आती है, उससे जगत् में जानने में अशक्य उस नारी-चरित्र को नमस्कार हो ।

जो कि पंडित का कहा कदापि मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं होता है, तथापि उसके वचन पर विश्वास नहीं करता हुआ ऐसी चेष्टा करनेवाली किसी चतुर नारी को लाकर उसकी परीक्षा करनी चाहिए इस प्रकार मन में निर्धारण कर जिसे जानने के लिए मैंने इसे ग्रहण की थी, इसके प्रसाद से वह समस्त ही जान लिया है । इसलिए अब कृतकृत्य होता हुआ मैं इस निरागिनी और तुझ पर अनुरागिनी बनी स्त्री को कैसे भजूँ ? अथवा कैसे अनुरागी बनूँ ? क्योंकि वैरिनी के समान प्रतिकूलता को प्राप्त हुई नारी पुरुष को दुःखित ही करती है । पूर्व में की गयी मेरी प्रतिज्ञा के सत्यत्व से मेरा क्रोधावेश तुम्हारे अंगों को नहीं भजता है । अर्थात् तुझे अंग-छेदन आदि दंड नही देना चाहता है अथवा न हि तुझे इस देश से निकालने की इच्छा करता है अथवा न हि तेरे सर्वस्व अपहरण की इच्छा करता है, उससे कभी-भी तुझे मुझसे भय उत्पन्न नहीं होगा । इसलिए उपभोग की गयी और अनुरागिनी इस स्त्री को तुम ग्रहण करो, अपने घर चले जाओ और युवा तुम दोनों अब पुनः ऐसा अकार्य मत करो । पूर्व में जिस मार्ग से तुम यहाँ आये थें, पुनः उसी गुप्त मार्ग से वैसे ही तुम इसके साथ चले जाओ । जैसे कोई भी तुम्हारे इस अकृत्य को और मेरी क्षमा को जान न सके । इस प्रकार इष्ट वैद्य के द्वारा कहे गये वांछित पथ्य के समान, राजा से कहा हुआ अभीष्ट को मानकर जैसे शिव गंगा को, वैसे वह सार्थवाह उसे स्वीकार कर, अपने अपराध की क्षमा माँगकर और राजा को नमस्कार कर सुरंग के मार्ग से उस स्वैरिणी स्त्री के साथ अपने महल में आया । उस अवसर पर क्षमा से पृथ्वी के समान, मेरु-पर्वत के समान अत्यंत दृढ, विनष्ट हुए अन्यून गर्ववाला,

परम-कारुणिक और साहसिक-शिरोमणि राजा भी अपने भवन में आया । समस्त सहाय को प्राप्त हुआ राजा प्रजाओं का परिपालन करता हुआ सुजनों को आमोदित करता हुआ और खलों को निष्कुल करता हुआ, जगत् निवासी जनों को आनंदित करता हुआ सुख-पूर्वक राज्य को करने लगा ।

लोक में प्रसिद्ध श्री सौधर्म बृहत्तप नामक निर्मल गच्छ के स्वामी तथा जगत्-जयी श्री राजेन्द्रसूरि के दोनों चरण कमलों में सदा, यतीन्द्रमुनि के द्वारा रचित इस गद्य प्रबन्ध श्री चंपकमाला के चरित्र में यह निर्मल तृतीय प्रस्ताव संपन्न हुआ ।

चतुर्थ प्रस्ताव

इस चौथे प्रस्ताव में मैं सुविस्तार-पूर्वक सती-चंपकमाला के सतीत्व के परीक्षण का वर्णन करता हूँ ।

अब एक प्रस्ताव में ब्रह्मा के समान सभा के अंदर सिंहासन पर सुख-पूर्वक बैठा हुआ विकसित हुए शरद्-ऋतु में चंद्र के समान मुखवाला, इसलिए ही दाड़िम बीज का अनुकरण करनेवाले दाँत की किरणों से संपूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करनेवाला और हास्य की क्रीड़ा में तत्पर, चार मंत्रियों से घेरा विक्रमार्क राजा जैसे पूर्व में सार्थवाह के मुख से महा-आश्चर्यकारी चंपकमाला के अखंडित शील के माहात्म्य को सुना था, वह उन मंत्रियों के आगे कहने लगा। राजा ने कहा उसे सुनकर यह महा-आश्चर्य है इस प्रकार आश्चर्य-चकित हुए वे राजा से कहने लगे कि- हे स्वामी ! यह सत्य नहीं लग रहा है, इसे हम सर्वथा ही झूठ मानते है । यद्यपि शास्त्रकारों ने शास्त्र

में सर्व व्यापी और सर्व सिद्धिमंत ब्रह्मा के ज्ञान समान स्त्रियों का चरित्र भी दुर्ज्ञेय है, ऐसा कहते हैं, अथवा जैसे अति-चंचल मत्स्यों के आलय ऐसे जल शुद्ध नहीं होता हैं, वैसे अत्यंत चंचल प्रकृतिवाली स्त्रियों का मन कैसे शुद्धता अथवा स्थिरता को प्राप्त करे? यह सर्वथा ही आकाश-कुसुम ही लग रहा है। यद्यपि आपके समान विशुद्ध मनवाला और अखंडित शीलशाली किसी अन्य पुरुष की संभावना है, किन्तु स्वभाव से चंचल और कौटिल्य प्रियवाली स्त्रियाँ अखंडित शीलवाली हो यह कदापि संभवित नही है। यद्यपि कोई अबला स्थान के अथवा प्रार्थना करनेवाले के विरह से और निज परिजन के भय से अथवा लज्जा से कायिक और वाचनिक शील की रक्षण करती हुई भी उसका मन कभी भी शुद्ध नहीं हो सकता, आप उनके मन से शील-पालन को खरगोश के सिंग समान ही जाने क्योंकि निरंतर ही स्त्रियों का चित्त चंचल ही होता है, इसलिए वर्त्तमान-काल में स्त्रियों का त्रिकरण से विशुद्ध शील असंभव ही लग रहा है। कहा गया है कि-

हे नारद ! नारीयों को उनके योग्य संकेत स्थल नहीं मिलने से अथवा समय के नहीं होने से अथवा प्रार्थना करनेवाला कोई पुरुष नहीं मिलने से, उनमें सतीत्व उत्पन्न होता है, अन्यथा नहीं, यह तात्पर्य है।

हे राजन् ! जैसे अश्वशाला में बाँधा हुआ अश्व मन से विषयों में आसक्त होते हुए भी अगति से शील का रक्षण करता है, वैसे ही जो स्त्री है मन में विषय क्रीड़ा करने की इच्छा के सद्भाव होने पर भी लज्जा-भय आदि से शील का पालन करती है, मनोयोग के बिना उसका शील पालन वास्तविक नहीं होता अथवा न हि वह स्त्री शास्त्र में कहे हुए माहात्म्य को प्राप्त करती है। जो स्त्री मन से विषय

सुख की इच्छा नहीं करती है, वह ही सतीत्व को प्राप्त करती है और वैसी कोई भी स्त्री दृष्टि-पथ पर नहीं चढ़ रही है। और प्रभु ने जो कहा था कि स्त्री के शील-प्रभाव से ही सार्थवाह के कंठ में रही चंपकमाला नही मुर्झाती है, तत्काल निष्पन्न हुई के समान ही लगती है मैं उसे भी विचार-सह नहीं मानता हूँ अथवा न हि वहाँ उसके पत्नी का अखंड शील हेतु है, किन्तु किसी देवता के अनुभाव से ही उसके कंठ में रही हुई वह माला निरंतर विकसित हुई के समान स्थित है। आप इसे निश्चय से जाने कि वह चंपकमाला व्यर्थ ही माया से वैसे कपट कर अपने भर्त्ता सार्थवाह को ठग रही है। निश्चय से वह किसी युवा कामुक के साथ स्वेच्छा से क्रीड़ा कर रही है, क्योंकि इन्द्रजालिक के समान मायाविनी स्त्री विचित्र ही माया की रचना कर मूर्ख पुरुष को ठगती है और सतीत्व को प्राप्त होती है।

राजा ने कहा- हे मंत्रियों ! तुम इस प्रकार मत कहो क्योंकि यह पृथ्वी रत्नगर्भा कही जाती है, उससे इस पर बहुत स्त्री यथार्थ शील का परिपालन करनेवाली हो तो वहाँ कौन-सा आश्चर्य है ? जैसे पुरुषों में अब भी यथार्थ, अखंडित शीलवान् है, वैसे नारीयों में भी आजन्म कोई अखंड शीलवाली क्यों न हो ? इस प्रकार से होते हुए यदि तुम उस सार्थवाह की पत्नी में सत्-शील के विषय में संशय करते हो तो शीघ्र ही उसकी परीक्षा करो, अवश्य परीक्षा से सत्-असत् की अभिव्यक्ति होगी। परीक्षा सभी के तत्त्व को व्यक्त करती ही है। क्योंकि स्वर्ण भी परीक्षण से ही सभी के मूर्धन्यत्व और अकलंकता को धारण करने के लिए समर्थ होता है।

इस प्रकार राजा के द्वारा कहने पर दुर्बुद्धि के निधान तुल्य वें चारों मन्त्री प्रभु का आदेश प्रमाण है, ऐसा कहकर अपने-अपने महल लौट आये। तत्पश्चात् न्याय-मार्ग को छोड़कर और अन्याय

मार्ग पर पदार्पण करनेवाले तथा बक-वृत्तिवालें वें चारों मन्त्री उज्जयिनी नगरी से निकलकर दूसरों से अकंपित चंपा-नगरी में पूर्व-पश्चात् क्रम से अपने-अपने स्तोक परिवार से युक्त आकर पृथक्-पृथक् स्थान में रहे । उन मंत्रियों में प्रथम कपट रूपी नीर-समुद्र मूलदेव नामक मंत्री उस सार्थवाह के घर के समीप में ही किसी एक वृद्ध पुरुष के सदन में कीराये से उतरा । एक अति-वृद्ध दूत-कर्म में कुशल नारी को दान आदि से वश कर और समस्त सिखाकर अपने प्रयोजन को साधने की इच्छा से चंपकमाला के पास भेजा । वह कुलटा उसके समीप आकर उसे एकांत में ऐसा कहा कि- हे बाले ! चिर काल से तेरा पति विदेश में रह रहा है, बहुत काल व्यतीत हो चुका है, परन्तु वापिस नहीं आया है और तुम विद्युद् के समान सफेद वर्णवाली, सुंदर तारुण्य से परिपूर्ण, रति के समान सकल स्त्री के सौन्दर्य के संपूर्ण गर्व को जीतनेवाली दीखायी देती हो, हा ! हा ! ऐसे रूप-लावण्य तारुण्य को प्राप्त हुई तुम अब अकेली कैसे उसके विरह को सहन कर रही हो ? यहाँ जो साधारण स्त्री है, उसे भी पति-विरह दुर्वह दुःख को प्राप्त कराता है, तो सुदक्ष और चतुर स्त्रियों में मूर्धन्य तथा नव-यौवना तुझे पति-विरह दुःखित करे, यहाँ कौन-सा आश्चर्य है ? हे सुंदरी ! तेरा स्वामी भी लोभियों में अग्रेसर ही लगता है, क्योंकि श्रीमंत होते हुए भी धनार्जन के लिए तुझे सर्वथा विस्मृत कर पृथ्वी ऊपर जहाँ-तहाँ पर्यटन कर रहा है । लक्ष्मी में एकांत से आसक्त चित्तवाला तेरा स्वामी जहाँ कहीं पर भी भ्रमण कर रहा हो और जो शठपने से अन्याय में भी आसक्त हुआ हो इस कारण से उस भर्ता पर तेरी ऐसी गाढ़ प्रीति अथवा प्रतिबंध कैसे घटित हो सकता है ? जिसने काम रूपी सिंह से अति-भीषण यौवन रूपी महा-वन में तुझ अकेली अबला को छोड़ी है और अन्यत्र चला

गया है तो उससे द्वितीय अन्य कौन शठ कहाँ जाय ? इसलिए ही हे सुमुखी ! उसके अनुराग को छोड़ दो और हितकारी मेरे वचन को सुनो! तेरे मन के अनुकूल किसी अनुरागी युवा पुरुष के साथ स्वेच्छा से विहार करो और इस यौवन को सफल करो । भोग के बिना यह तेरा निरुपम यौवन भी निश्चय से आकाश-कुसुम के समान व्यर्थ ही जा रहा है । प्रधानता से जैसे पुरुषों की सुख की साधन स्त्री है, वैसे ही स्त्रियों का भी वह असाधारण साधन पुरुष ही है । किसी कवि ने जैसे इसप्रकार से कहा है कि- हे जीवितेश ! आपके हृदय में अनुराग दीखायी देने से विदेश से वापिस लौटने के बाद हम दोनों का पुनः संग भी होगा, इसमें लेश-मात्र भी संशय नही करती हूँ, किन्तु विद्युत्-विलास के समान अस्थिर यह नवयौवन-श्री व्यतीत होने पर भी पुनः नहीं आयगी, इसलिए आप इसे सफल कर ही विदेश जाय ।

वैसा श्रेष्ठ और गुणवान् पुरुष दृष्टि-पथ पर नहीं चढ़ रहा है, ऐसा तुम मत कहो ! जैसे सृष्टि में रूप-तारुण्य गुणों से तुम सुंदर शोभावाली अकेली ही हो, वैसे ही कोई पुरुष भी होगा, इसे तुम सत्य जानो । निश्चय से जो गुणवान् पुरुष है, वह अवश्य ही गुण-गण से मंडित सज्जन की संगति के लिए स्वयं ही प्रवर्त्तन करता है ओर किसी की प्रेरणा की अपेक्षा नहीं रखता है । जैसे किसी से प्रेरित नहीं होता हुआ भी हंस सज्जन से मिलने की इच्छा से कमलिनी की ओर गमन करता है । गुणवंतों की वैसी ही प्रकृति है, जिससे वह गुणवान् गुणी-जन से मिलने के लिए स्वयं ही प्रवर्त्तन करता है । हे सुभाग्यशालिनी! अन्य बात तो दूर रहो, गुणी-जनों के संगति के लिए बहुत दूर से भी गुणी-जन आता है । इसलिए ही गुणवती आपके साथ संगति की इच्छा को वहन करते हुए उज्जयिनी से कोई श्रेष्ठ महा-मंत्री यहाँ पर

आये हुए है । जैसे कि- गुणवान् जन को देखकर गुणग्राही पुरुष आनंदित होता है, किन्तु निर्गुणी को गुणवान् के ऊपर प्रीति उत्पन्न नहीं होती है । जैसे कि- भँवर कमल के सौरभ्य गुण से आकर्षित होकर वन से कमल के समीप में जाता है, किन्तु वहाँ रहते हुए भी कमल के गुणों से अनभिज्ञपने से मेंढक कमल के समीप में नहीं जाता है ।

वह राज-मंत्री कामुक, युवान् सकल कलाओं में विद्वान् और महान् होते हुए किसी अद्भुत सुषमा को ही धारण करता है । रूप से साक्षात् मदन के समान लगता हुआ, महा-चतुरों में शिरोमणि, मधुर-आलापी, मांसल अवयववाला, सुंदर चिह्नों से चिह्नित और मुकुट से मंडित, बृहस्पति के समान मतिमान्, विक्रमार्क राजा के कुल परंपरा में रहे वर्त्तमान मन्त्री-गण में बड़ा और विक्रमराजा को प्रधानता से संमत मूलदेव नामक मंत्री कभी किसी जन के मुख से तुम्हारे लोकोत्तर और अत्यंत जगत् में प्रसार होनेवाले गुणावली को सुनकर तुमसे मिलने के लिए अति-उत्सुक होता हुआ यहाँ पर आया है । उसी मंत्री ने अपने आशय को तुझे कहने के लिए मुझे तेरे समीप में भेजा है । जिससे कि अति-उग्र रागवान्, महान् और मतिमान् पुरुष किसी के भी आगे अपने आशय को प्रकट करने के लिए समर्थ नहीं होता है । उससे अनुरूप और भाग्य-सौन्दर्य का निधान तथा बड़े पुण्य-उदय से प्राप्त करने योग्य आये हुए उस श्रेष्ठ मंत्री को तुम सेवो और उसके संयोग से इस सुंदर यौवन को सफल करो । और अधिक क्या कहूँ? सकल स्त्री-जन के मन को मोहित बनाने में दक्षिण तथा सतत ही सौख्यकारी उसके साथ जिस स्त्री ने क्रीड़ा नहीं की है, वन के कुसुम के समान उस स्त्री का यौवन व्यर्थ ही जानो । जैसे कि- हे कुटज! भाग्य से अपने सदन

में आये भँवर का तुम अनादर मत करो क्योंकि यह कुसुमरस से भरपूर कमलों को मान्य है ।

दूती के द्वारा कहे गये अति-गर्हनीय वृत्तांत को सुनकर वह सती मन में इस प्रकार से विचारने लगी कि- इस व्यसन में आसक्त, उन्मत्त और अधम मंत्री को धिक्कार हो, धिक्कार हो । कैसे अनीति-परायण इसे मन्त्री-पद पर नियुक्त किया है ? जो पुरुष सदाचारी और न्याय मार्ग का अनुसारी होता है, वैसे जन में ही वैसा अधिकार शोभा को धारण करता है । उसके अन-योग्य पुरुष में वह अधिकार प्रदान करनेवाले की अज्ञानता को ही प्रकट करता है । जो कि विक्रम राजा सदाचारी, परोपकारी और न्यायवित् सुना जाता है, परन्तु ऐसे अकृत्य करनेवाले को जो मन्त्री किया है, उससे उसमें रहे हुए भी सदाचारीत्व आदि गुण-गण का महान् जन कैसे विश्वास करे ? उससे मैं मानती हूँ कि कुल की परंपरा से, मोह से अथवा इसकी दुर्जनता-अज्ञानता आदि दुर्गुण को जानने की इच्छा से अथवा तीव्र मतिमंतपने से इसे मन्त्री पद पर नियुक्त किया है । यह बहुत दूर देश में निवास करता हुआ स्वप्न में भी नहीं देखी गयी मुझ पर कैसे रागवाला बना है ? अथवा अदृष्ट और अति-दूर रही हुई मुझको इसने कैसे सुना है ? अथवा व्यवसाय के हेतु से उज्जयिनी नगरी में गये विशुद्ध बुद्धिवाले मेरा भर्त्ता ने निरंतर राज-सभा में गमन-आगमन किया हो और वही मेरे अखंड शील को ज्ञापन करनेवाली और मेरे पति के कंठ में स्थित नहीं मुर्झाती और सदा विकसित माला को देखते हुए राजा ने उसकी परीक्षा के लिए कुतूहल से इस अधम को यहाँ भेजा हो ? जैसे राहु चंद्र की पूर्ण कांति को सहन नहीं करता है अथवा पवन मेघ की उन्नता को खंडन करने की इच्छा करता है, वैसे ही स्वभाव से अनार्य बुद्धिवाला यह मंत्री मेरे श्रेष्ठ सतीत्व को

भग्न करने के लिए यहाँ पर आया है, किन्तु बड़े सर्प की फणा में रहे हुए मणि के समान कदाचित् भी यह इसे विनष्ट करने के लिए समर्थ नहीं होगा। स्वप्न में भी यह मेरे अमूल्य रत्न प्रायः इस शील को नष्ट करने के लिए प्रभावशाली नहीं होगा। इसलिए अब इस दूती को उसके दुराशय लक्षण रूपी महा-रोग की शांति को करनेवाली मुझे उसे अनुकूल उत्तर ही देना चाहिए। यह मंत्री यौवन, धन और अधिकार लक्षण रूपी तीन दोषों से दूषित हुआ है। इसलिए ही उससे उत्पन्न हुए अभिमान से और उन्मत्तपने से ऐसा अयोग्य मुझे दूती के मुख से कहते हुए मेरे वाक्य रूपी महा-औषध को पीकर भी हृदय में विवेक लक्षणवाले पाटव को लेश-मात्र भी धारण करने के लिए योग्य नहीं है। क्योंकि यह सन्निपात अत्यंत महान् रोग है और अत्यंत कठिन चिकित्सा बिना कदापि उसे नहीं छोड़ेगा। जैसे कि-विधिवत् जब तक अनुरूप प्रतीकार नहीं करते, तब तक शत्रु के समान, रोग नाश नही होता है।

जो मैं अभी अपने यथार्थ अभिप्राय को कहूँगी, तो यह दुर्बुद्धिवाला मंत्री प्रतिबोध को प्राप्त नही करेगा, इसलिए उसके उचित फल को दिखाकर ही अपने अभिप्राय को प्रकाशित करुँगी। अब उसके उचित माया से ही ठगना चाहिए और संतुष्ट करना चाहिए क्योंकि अवसर के उपस्थित होने पर और संकट में पूर्व के महा-जनों ने भी कपटता की थी, जैसे कि त्रिभुवन को परिताप देनेवाले बलि को ठगने के लिए विष्णु वामनता को प्राप्त हुआ था, इस प्रकार निश्चय कर सतीयों में श्रेष्ठ वह चंपकमाला ने उस दूती से इसप्रकार से कहना प्रारंभ किया-

हे दूती ! यह अतीव अच्छा हुआ है जो तुम अब यहाँ आयी हो। प्रायः कर स्त्रियों का मन सदा ही काम से बाधित हुए के समान

रहा हुआ है । उस बाधा को दूर करने के लिए वैद्य के समान भर्त्ता का सामीप्य ही समर्थ है । जो चिर विरहिणी स्त्री है, वह तो उस प्राणान्त करनेवाली पीड़ा को सहन करती है और उसका संपूर्ण शरीर अत्यंत ताप से युक्त बनता है । ग्रीष्म-ऋतु में लता के समान मैं कैसे भी लोक-लज्जा और कुलाचार आदि छोड़ने में असमर्थ हुई और काम के बाण-समूह से हृदय में वींधि गयी दिन-रात असहनीय क्लेश का अनुभव कर रही हूँ । अन्य क्या कहूँ ? दावानल से संतप्त हुई हरिनी के समान और ग्रीष्म काल में अति-तप्त धूल पर गिरी मत्सी के समान मदन की बाधा से व्याकुल होकर एक बार मैंने इस प्रकार विचार किया कि मेरा भर्त्ता मुझे छोड़कर लोभ से देशान्तर में निवास कर रहा है और कदापि घर में नही आता है, तो मैं दुःख-पूर्वक वहन की जाय और प्राणान्त से भी अधिक इस काम पीड़ा को कितने काल तक सहन करुँ ? इसलिए मुझे कोई महाकामी, अत्यंत बलवान्, सकल कलावान्, युवान् और विषय रूपी अग्नि के दाह को प्रशांत करने में पटु पुरुष ढूँढना चाहिए, इस प्रकार विचार कर चिर समय से इसे करने की इच्छा से मैं उत्सुक बनी हुई थी, परन्तु आज मेरे पुण्य-समूह से आकृष्ट बनी और उस अभीष्ट को साधनेवाली तुम यहाँ मेरे समीप में आगयी हो । हे माता ! आप मुझे सकल जन के हित की इच्छुक, शुभ कार्य की समुत्पादक और परोपकार करनेवाली लगती हो, इसलिए मुझ पर उपकार करो ! इसे करने के लिए मुझे बड़ी चिन्ता हुई थी कि कोई गुणवान् सरस युवान् मिले, तो उसके साथ स्वेच्छा से सुख का अनुभव करुँ । परन्तु आज जैसे पवन धूल के पड़ल को वैसे तूंने उस चिन्ता का नाश किया है । और जैसे क्यारी में बोया हुआ वृक्ष उसके मूल में जल के सिंचन से वृद्धि को प्राप्त होता है और नव-पल्लवित होता है, वैसे ही पानी की नीक समान तूंने हृदय रूपी

क्यारी में स्थित मेरे मनोरथ लक्षणवाले इस वृक्ष को उस पुरुष के समागम की वार्त्ता रूपी अमृत से सिंचन कर नव-पल्लवित किया है । अधिक कहने से क्या लाभ है ? जैसे ग्रीष्म-ऋतु में सूर्य से संतप्त हुई पृथ्वी को मेघ-माला आनंदित करती है, वैसे ही यहाँ पर आई तूंने अब चिर विरहिणी और विषय से संतप्त मुझे चन्द्र की कला के समान अत्यंत शीतल बनाया है । उस पुरुष के साथ मिलने के लिए मेरा मन अति-उत्सुकता को धारण कर रहा है और समुत्साही है, फिर भी किसी कार्य वशात् मैं थोड़ा विलंब करुँगी। आज के दिन से चौथे दिन के हो जाने पर तुम यहाँ भेजो । जैसे लोक में धन के बिना भोग्य सामग्री का संपादन नहीं होता है, वैसे ही दान के बिना उसके औदार्य की परीक्षा भी नहीं होती है । प्रेम का यह दान ही प्रथम है, इस प्रकार शास्त्र में पंड़ित कहते है । इसलिए पहले ही वह मुझे लाख दीनारों को भेजे, यह समस्त ही तुम उसे कहो । मुझे मिलने की उत्सुकतावाले उसे शीघ्र ही तुम आश्वासित करो । यह सुनकर उस दूती ने वह समस्त ही उस मंत्री से कहा ! उसे सनकर वह भी अपने को कृतार्थ मानता हुआ आनंदित होने लगा ।

इस ओर बुद्धि की खान सदृश वह सती गृह के अंदर किसी एक कोने में धान्य स्थापन करने के बहाने से एकांत बैठने के स्थल पर अत्यंत नीचे एक खाई खोदवाई । वहाँ उस दयाशालिनी ने नीचे गंगा की मिट्टी से ढंककर उसे अत्यंत कोमल कराया । उसके ऊपर सूक्ष्म कच्चे धागे से सीआ हुआ, गद्दी से सुसज्जित और निर्मल, सुंदर वस्त्र से विभूषित पलंग रखा । अब उस दिन यथोक्त समय में लाख दीनारों को भेजनेवाला, कामदेव रूपी महा-रोग का उद्दीपन करनेवाला, कुपथ्य-वेष को धारण करनेवाला, कपूर, शक्कर और लविंग आदि से मिश्रित तांबूल से भरे हुए मुखवाला, कस्तूरी, केसर

और कर्दम से शरीर पर लिप्त हुआ, काम के धनुष तुल्य सुंदर माला से कंठ से विभूषित बना, कस्तूरी प्रमुख लेप से दाढी-मूंछ को सुगंधी किया हुआ और सुगंधि तथा विशिष्ट धूप से शरीर के ऊपर वस्त्रों को सुवासित किया हुआ वह मंत्री रात्रि के प्रथम प्रहर में उस सती के घर में आया। उसी अवसर पर उस सती के द्वारा हाथ की अंगुलि से दीखायी गयी शय्या के ऊपर सत्-असत् के विवेक के बिना ही प्रमादी तुल्य वह मंत्री जब शीघ्रपने से बैठता है, तब उसके मनोरथ के साथ ही पलंग के ऊपर बिछाएँ धागे के समूह के टूट जाने पर सहसा ही दुर्बुद्धिवाला वह मंत्री उसके नीचे बड़ी खाई में गिर पड़ा।

अब इस प्रकार विक्रमादित्य राजा के सहस्रदेव-श्रीसार-बुद्धिसार नामक अन्य तीनों भी मंत्री पहले वहाँ आकर वैसे ही दूती के द्वारा चंपकमाला को अपने-अपने आशय की विज्ञप्ति की। दूती के मुख से उसके आदेश दिये समय को जानकर उसी रात्रि में क्रमशः दूसरे, तीसरे और चौथे प्रहरों में उसके आलय में आये। पूर्व के समान यें तीनों भी पलंग के ऊपर बैठने के तुरंत बाद ही उसके नीचे कीये हुए बड़ी खाई में गिरें। उससे मैं यह जानता हूँ कि चिर समय से वियोगी हुए परस्पर मिलने की इच्छा से उत्सुकतावाले के समान मिले हो।

अब उस खाई में गिरे वे चारों भी अति- सूक्ष्म धूल को देखते हुए इस प्रकार परस्पर आलाप करने लगे कि- अहो ! यह सतीयों में श्रेष्ठ है और इसकी दयालुता भी बड़ी है जो घोर नरक की उपमावाले बड़े खाई में इसके द्वारा गिराएँ जाते भी हमारे अंग भग्न नहीं हुए है। जो पहले इस खाई में गिरे हुए हमको अति-क्लेश हो रहा है, परन्तु भविष्य में यह शिक्षण लाभकारी ही होगा। इस सती के द्वारा जो हमारी यह दुर्दशा की गयी है, उसे भी शिक्षा ही माननी चाहिए।

क्योंकि यह सती कैसी प्रकांड मतिमती है और कितना इसका चातुर्य है, सर्वथा सज्जन और कवियों के द्वारा अत्यंत प्रशंसनीय लगती है जिससे कि निज अतुल चातुर्य कला की कल्पना से अति-मतिमंत हमें भी मूर्खों के समान वैसे छलित किया है जैसे कि दीपक में गिरते हुए पतंगियें स्व-दोष से भस्मसात् होते हैं । तथा हम भी विषय से परि-पीड़ित होते हुए काम की किंकरता को प्राप्त हुए चतुरों में अग्रेसर उसके द्वारा छलित कीये गये घोर नरक के आकारवाले और अत्यंत नीचे इस खाई में गिर पड़े हैं । इसलिए इस बड़ी खाई में गिरे हुए, दुर्मदों से दुर्दमन बड़े हाथियों के समान, विषय-आशा रूपी रोग से नष्ट हुए ज्ञान रूपी नेत्रवालें तथा मद से उन्मत्त हुए हमें सैंकड़ों बार धिक्कार हो। जैसे मांस-पिंड खाने की इच्छा से दुर्बुद्धिशाली मत्स्यों की गले के बंधन से दुर्दशा होती है, वैसे ही विषय रूपी मांस में आसक्त हुए और दुर्बुद्धिशिरोमणि हमारे जैसों की ऐसी दुःखकारी स्थिति उत्पन्न हो, वहाँ कौन-सा आश्चर्य है ?

उस कारण से गुण-वर्ण इन दोनों से यह विषय, विष से भी अधिक जागृत हैं । क्योंकि भक्षण किया गया सत् विष ही लोगों को पीड़ित करता है, किन्तु यह विषय तो दर्शन आदि से भी लोगों का अधिक पराभव करता है । इस सती के शील रूपी मांस का भक्षण करने के लिए आसक्त हुए हम यहाँ पर आये थें, परन्तु दुर्भाग्य के योग से अपूर्ण मनोरथवाले हम मध्य में ही ऐसी शोचनीय दशा को प्राप्त हुए हैं । कूएँ की उपमावाले इस खाई में हमारे पूर्व कृत अशुभ कर्मों ने ही गिराया है । भीषण नरक में नारक जीव के समान हम इस खाई में जीवन-पर्यंत कैसे रह सकेंगें ? जब तक हम अन्य पुरुष से कुछ भी नहीं कहते है, तब तक अज्ञात ऐसी दुर्दशा को प्राप्त और कुकर्म के फलों को प्राप्त करनेवालें हमें कोई दासी का पुत्र आदि भी नही जानने

से वह यहाँ पर कैसे संशोधन करे अथवा कैसे जाने ? जैसे महा आवर्त्तवाले सागर में गिरि हुई और चक्र के समान वही पर भ्रमण करती हुई नाव का उद्धार करने के लिए पार प्राप्त नहीं किया जाता है, वैसे ही इस खाई से हमारा उद्धार भी नहीं दीखायी देता है । इस प्रकार परस्पर आलाप करते हुए, चिन्ता से आतुर और शोक करते हुए वे उसी खाई में अकथनीय दुःख का अनुभव करते हुए भूख-प्यास से व्याप्त हुए रहे हुए थे ।

तत्पश्चात् प्रति-दिन छींके से मिट्टीमय पात्र में कोद्रव आदि कदन्न भोजन के लिए रखकर और कमण्डलु में जल डालकर हे मन्त्रियों ! तुम सावधान बनो और भोजन-पदार्थ आदि को ग्रहण करो । इस प्रकार कहकर सर्व खाद्य-पेय आदि को देती हुई वह उनकी रक्षण करती थी । जो कि वैद्य गणों के द्वारा कहा गया है कि-उपवास के समान लघु अशन गुणकारी है, उस कारण से ही अल्प भोजन के द्वारा भी शरीर की रक्षा करते हुए वे मन्त्री आनंदित हुए थें। इस प्रकार परस्पर निरंतर अत्यंत शोक करते हुए और पशु के समान वहीं पर भोजन करते हुए और मल-मूत्र आदि का विसर्जन करते हुए और दुर्वचनीय कायिक कष्ट को भी सहन करते हुए तथा भाव के बिना रस त्याग आदि तप का भी आचरण कर रहे थे । दीन मुखवाले और पारतन्त्र्य को प्राप्त उन चारों मंत्रियों ने पल्योपम के समान, छह महीनें उस खाई में बड़े कष्ट से व्यतीत कीये थें ।

इस अवसर में किसी शत्रु को जीतकर गगनधूलि सार्थवाह के साथ राजा विक्रमादित्य सैन्य सहित उस चम्पानगरी में आया था । तत्पश्चात् सार्थवाह राजा की आज्ञा से स्व-सदन में आया । तब अवसर के मिलने पर उस सती ने संपूर्ण मंत्रियों की कथा अपने भर्त्ता से कही । राजा भी जब पूर्व में चंपकमाला के शील की परीक्षा के लिए

जो मन्त्री भेजे गये थें, उनको बार-बार स्मरण करते हुए उनकी शुद्धि के लिए उत्सुक हुआ था, तब बुद्धि की खान सदृश और सती ऐसी अपनी स्त्री से प्रेरित होता हुआ सार्थवाह ने सैन्य सहित राजा को भोजन के लिए अपने गृह में निमंत्रण किया । उसके अधिक आग्रह से राजा ने भी उसके वचन को माना । उनके उचित विविध भोजन सामग्री आदि संपादन के लिए उद्यम से युक्त वह अपने घर पर आया। सार्थवाह ने गुप्त रीति से पक्व-अन्न आदि विविध भोजन सामग्री दूसरे के भवन में पकवायी थी । तब राजा भी सन्तुष्ट हुआ और सोचने लगा कि यहाँ अवश्य ही इष्ट कार्य सिद्ध होगा, जो इस सार्थवाह के द्वारा संपादित की गयी भोजन सामग्री को उसके गृह में जाकर मैं सैन्य सहित भोजन करुँ यह योग्य है । जो कि सार्थवाह ने प्रमोद के अतिरेक से सैन्य सहित ही मुझे भोजन के लिए निमंत्रण किया है, तथापि उतनी सामग्रीयों को संपादन करने के लिए वह कदापि समर्थ न हो, ऐसा विचार कर मतिमान् राजा ने किसी अपने सेवक को उसके घर में भेजा । वह सेवक भी उसके घर में आकर और वापिस पीछे लौटकर राजा से इस प्रकार कहने लगा कि- हे स्वामी ! उसके घर में सामग्री की क्या बात करुँ, पाक-शाला में धूआँ भी नहीं देखा और उसके अनुचर निश्चिंत ही दीखाई दे रहे थें, अन्य क्या कहूँ ? जितना एक शिशु भी भोजन करे, उतनी सामग्री भी उसके द्वारा नहीं करायी गयी है, पुनः इसने सैन्य सहित श्रीमान् को कैसे निमंत्रण किया है ? इस प्रकार सेवक के द्वारा कहा गया सुनकर राजा भी तत्काल ही क्रोध से जला और इस प्रकार से कहने लगा कि- अहो ! जो यह सैन्य सहित मुझे निमंत्रित कर कुछ भी नहीं करते हुए निरुद्यम रहा हुआ है ? उससे अनुमान किया जाता है कि यह महान् धूर्त्त है अथवा क्या यह घातक है ? वञ्चक है अथवा आलसी है ?

जो हो, वह हो ! वेला हो जाने पर परिवार सहित मैं उसके घर पर भोजन करने के लिए जाऊँगा और सामग्री के बिना यह मेरे इन परिवारों को कैसे भोजन कराता है ? यह भी देख लूँगा ।

इसी अवसर में अस्थि-चर्म अवशेष रहे हुए और खाई में स्थित उन मंत्रियों से अपनी स्त्री से शिक्षित सार्थवाह इस प्रकार कहने लगा कि- हे मन्त्रियों ! यदि मेरे आदेश को संशय रहित होकर तुम करोगे, तो तुमको मैं घोर अंधकारवाले नरक से प्राणियों के समान अवश्य ही इस खाई से बाहर निकालूँगा । यदि तुम लेश-मात्र भी उससे विपरीत करोगे, तो पुनः इसी खाई में डालूँगा । उस वचन को सुनकर वे इस प्रकार कहने लगे कि- हे अभय-प्रद ! आप जैसे कहोगे हम वैसे ही आचरण करेंगे, हम उसका उल्लंघन नही करेंगे, इसे आप सत्य जाने । परन्तु इस खाई से तुरंत ही चिर से पाप के फल को भोगनेवाले और अति-दुःखित हमारा उद्धार करे । तुम महान्-पुरुषों को भी श्लाघ्य हो और समस्तों को नमस्करणीय हो, क्योंकि यह तेरी सतीयों में श्रेष्ठ और विदुषी, विधि के द्वारा प्राण-वल्लभा की गयी है ।

अब शीघ्र से उस खाई के मध्य से उनको निष्कासित कर और शुद्ध पानी से स्नान कराकर उनके सकल शरीर पर कपूर आदि सुरभित कीये हुए रक्त-चंदन का लिंपन किया । तत्पश्चात् यक्षों के समान उनको विविध कुसुमों से शोभित कर और उनके शरीर पर यक्ष-कर्दम का अनुलेप कर बड़ी माला पहनायी । पश्चात् उनको गृह के मध्य-भाग में स्थापित किया और उनके समीप में उन सकल भोजन सामग्रीयों को रखी । पुनः उनको इस प्रकार से शिक्षा भी दी- जब आये हुए लोग तुमको देखें तब देवों के समान तुम पलक रहित होकर स्थित रहो । राजा आदि सकल लोगों के भोजन करने के लिए

अपने-अपने आसन पर बैठ जाने पर, वें जिस-जिस भोजन सामग्री की तुमसे प्रार्थना करे, उस-उस सामग्री को शीघ्र ही देना और लेश-मात्र भी विलंब मत करना । तब मैं तुमको छोडूँगा किन्तु विपरीत करने पर कदापि नही छोडूँगा, मैं यह सत्य कह रहा हूँ । इस प्रकार सार्थवाह का कहा संपूर्ण भी उन्होंने हर्ष-पूर्वक स्वीकार किया । उसके बाद सार्थवाह राजा के समीप में जाकर और नमस्कार कर इस प्रकार से प्रार्थना करने लगा कि-

हे स्वामी ! हे नीतिमंत और श्रीमंतों में अद्वितीय ! अब भोजन-वेला हो चुकी है, इसलिए श्रीमान् प्रभु के चरण परीवार सहित मेरे आलय में आकर पवित्र करे । तब स्वभाव से ही पराक्रमी और इन्द्र के समान शोभा को वहन करता हुआ सन्देह-समूह के होते हुए भी दाक्षिण्य-चित्तवाला राजा सैन्य सहित उसके निवास स्थान में गया । उस अवसर में राजेन्द्र के गृह-द्वार पर पहुँचने पर सुगंधि कीये हुए कुंकुम से युक्त चावलों से और सुगंधि-पुष्पों के द्वारा तथा स्वर्ण-मोतीयों के द्वारा सार्थवाह की पत्नी ने राजा की पूजा कर वर्धापनी दी थी । उसके बाद राजेन्द्र को अति-ऊँचे और सुंदर शुभ-आसन पर बैठाकर शतपाक आदि महा-सुगंधि तैल का उसके अंग में मर्दन किया और यथा-स्थान लघु, मध्य और उत्तर हाथ के व्यापार से राजा के सर्व शरीर का संमर्दन कर उसके मन को प्रसन्न करने लगा । पश्चात् उसके अंग पर यक्ष-कर्दम आदि विशिष्ट चूर्ण का विलेपन कर, उष्ण पानी से स्नान कराया । स्वच्छ और मनोहर कौशेय-वस्त्र से उसके अंग को जल- रहित कर कपूर, कस्तूरिका आदि से मिश्रित चंदन को राजा के अंग पर विलेपन कर और कपूर, अगर चंदन के दाह से उत्पन्न सुगंधि धूप से उसके सिर के बालों को धूप कर और सुगंधि और नूतन कुसुमों से बनी माला से विभूषित कर

गंगा के पानी से मिश्रित यमुना के तरंग के समान उस सार्थवाह ने चोटी बाँधी। पश्चात् जातिवंत स्वर्ण-वर्ण सदृश काश्मिरी-केसर और कर्दम से भाग्य-लक्ष्मी की श्रेष्ठ-पट्ट उपमावाले राजा के विशाल भाल पर तिलक की रचना की। राजा के मन-सदन में निवास करती हुई बुद्धि-लज्जा और लक्ष्मी के झूलने के लिए झूलन-खाट के समान कंठ में अर्पित की हुई सुमाला अत्यंत शोभित हो रही थी। उसके बाद जहाँ पर यक्ष कीये हुए मंत्री थें, उसी सदन में वह राजा को ले गया। मुधा यक्ष कीये हुए उन मंत्रियों को नमस्कार कर सार्थवाह इसप्रकार से कहने लगा कि- हे यक्षों! यें मेरे प्रभु सपरिवार भोजन करने के लिए यहाँ पर आये हैं, इसलिए ही तुम शीघ्र से पीरोसने के लिए सामग्रीयों को अर्पण करो।

अब उन कृत्रिम यक्षों ने भी तत्काल ही उनके योग्य अनगिनत आसन, स्वर्णमय-रजतमय थालियाँ और छोटे-बड़े पानी के पात्र कल्पवृक्ष के समान उसे दीये। पश्चात् सुपक्व और अतिमिष्ट द्राक्ष, पिस्ता, अखरोट चकोतरे तथा राशी कीये हुए, अमृत के स्वाद को तिरस्कार करनेवाले, सुकोमल और माधुर्य से भरे हुए आम आदि दिव्य फलों को, तथा घी से भरे हुए माँड, मालपूएँ को, प्रीति-कारक सिंहकेशरिया मोदकों को, पुंजी कीये हुए और अमृत-तुल्य रसवालें तथा अति-सुंदर खाजे आदि मिष्ट पदार्थों को, और शक्कर, घी, चूर्ण से पूर्ण पकायें हुए तथा संपूर्ण चंद्र-मंडल के समान आकारवाले घृतपूरों को तथा स्वादिष्ट, विशिष्ट और अधिक घी में पकाये गये विविध पक्वान्न आदि सरस और रुचिकर पदार्थों को भी उसे वितरण कीये। पुनः उन्होंने बहुत वर्षीय अति-सूक्ष्म और सुगंधि शाली-ओदन तथा दालों को जो उनको भोजन करनेवालों को पुलकित करने में दाक्षिण्य-वाहक है तथा सुगंधि, नूतन,

पौष्टिक बहुत घी और राजा के भोजन योग्य विविध अनाज दीये । पश्चात् वे लौंग, इलायची, जाय-पत्र आदि से सुगंधिमय तांबूल से पूर्ण अनेक पात्रों को, कंकोल आदि चूर्ण को, विविध सुपारीयों को, शक्कर-मिश्रित अत्यधिक दूध को, अति-स्वादिष्ट दही को, राजा के योग्य उतने चीन-वस्त्रों को, विविध दिव्य आभरणों को प्रतियोगिता से समर्पित करने लगें । जो-जो पदार्थ उस अवसर पर रिक्तता को प्राप्त हुए थें, उनको पुनः भी गुप्त रीति से गूढचारी पुरुषों के द्वारा लाकर उनके समीप में स्थापित कीये । अब इनके द्वारा प्रदत्त विविध अति-स्वादिष्ट पदार्थों को यथेच्छा से परिवार सहित भोजन करता हुआ राजा अधिक प्रसन्न हुआ था ।

तत्पश्चात् राजा उसके घर में कल्पवृक्ष के समान मनो-वांछित फल देनेवाले और वहाँ अधिष्ठातृपने से संस्थित तथा यक्ष कीये गये उनको देखकर, मन में चमत्कृत हुआ सोचने लगा कि-अहो! यह सार्थवाह भाग्यवान् है, जो दास के समान यें यक्ष वशवर्ती होकर सदा ही इसकी सर्व इच्छाओं को पूर्ण करते है और यह जो आदेश करता है, वह समस्त संपादन करते हैं । जिस पुरुष के वश में ऐसे देव रहे हुए है, वह पुरुष लाख आदि जनों को भी भोजन कराने के लिए कैसे न पकवाएँ ? दुःस्थिति लक्षण रूपी हाथी के विभंजन में सिंह तुल्य तथा सकल मनोरथों की प्राप्ति के लिए कल्पवृक्ष सदृश यें यक्ष यदि मेरे गृह में रहे तो मैं कृतार्थ बनूँ । इसलिए ही भोजन के बाद मैं सार्थवाह से इन यक्षों की याचना करूँगा । जो कि यें सर्वथा अदेय ही हैं, तो भी यह सार्थवाह औदार्य और स्नेह से अवश्य ही मुझे देगा और कदापि याचना को विफल नहीं करेगा। इन यक्षों के प्रभाव से लोगों को यथा-इष्ट, विविध सुभोजन प्रदान के द्वारा मैं जगत् में अखण्ड यश को प्राप्त करूँगा । परन्तु मैं राजा हूँ और यह सेवक है,

इसलिए मैं इससे कैसे याचना करुँ ? , क्योंकि मुझ जैसे महान् पुरुषों को सेवक के प्रति याचना करना अवश्य ही लघुत्व का ही हेतु होगा। जैसे कि- संसार में महान् पुरुषों को याचन करना अवश्य ही लघुता का कारण होता है अर्थात् याचना से अत्यंत महान् पुरुष भी अति-लघु होता है, उस कारण से कदापि भ्रम से अर्थात् अज्ञान से निश्चित नही याचना करे । दूसरी बात यह है कि- बलि से याचना करने से मधु-मथन अर्थात् श्रीकृष्ण लघु हुआ था, इस कारण से यदि तुम महत्त्व चाहते हो तो मुझे दो इस प्रकार किसी से याचना मत करो । फिर भी-

जैसे मेघ सागर से पानी के समान, सज्जन भी दूसरों के उपकार के लिए याचना करते ही है । इस प्रकार चिन्ता से आकुलित हुआ और यक्ष के ग्रहण में समासक्त चित्तवाला विक्रमार्क राजा बड़े आग्रह से सार्थवाह से कहने लगा कि- हे मित्र ! मैं अब तुम्हारी ऐसी अलौकिक अद्भुत और यक्षों के द्वारा की गयी संपदा को देखता हुआ तुमसे इन यक्षों की याचना करता हूँ । जो कि चिन्तामणि तुल्य इन यक्षों को देने के लिए तुम प्रभावशाली नहीं हो, फिर भी लोलुपता से मैं प्रार्थना कर रहा हूँ, उसे तुम निष्फल मत करो । इस प्रकार राजा के कहने पर सार्थवाह कहने लगा कि- हे स्वामी ! आप ऐसा क्यों कह रहे हो ? मैं किसी की भी याचना का भंग नहीं करता हूँ, तो सेवनीय, जिष्णु आप प्रभु की याचना को मैं कैसे भंग करुँगा ? जो कि कहा है कि- इन अर्थियों के हृदय में रहे हुए इच्छित पदार्थ को कैसे जाने ? अथवा अपने वांछित के प्रकाशन के बिना ही कैसे दीया जाय ? जो दाता देने की उत्सुकता को दीखाते हुए भी अर्थियों के वाणी के अवसर को सहन करता है, उस दातार को धिक्कार हो अर्थात् जो दाता वांछित को देने के लिए मन करता हुआ भी उसके माँगने पर मैं

दूँगा, इस प्रकार विलंब करता है, वह दाता सज्जनों को प्रशंसनीय नहीं होता है, इसलिए याचकों के याचना के बिना ही उनके इच्छित को दे।

हे प्रभु ! और अधिक क्या कहूँ ? सेवकों का जो है, वहाँ स्वामियों का स्वामीत्व अन्य प्रकार से सिद्ध ही है, वहाँ आप लेश-मात्र भी संशय मत करो । मैं सेवक हूँ और आप सेव्य हो, इसलिए आप जैसे प्रभुओं को मुझ जैसे सेवकों को क्या अदेय है ? नहीं है ! अपेक्षा के होने पर प्राण भी दीये जाते हैं, तो यक्षों के अर्पण में क्या आश्चर्य है ? इसलिए ही जो पसंद है, उसे आप संशय रहित होकर ग्रहण करे । यें यक्ष आपके अभीष्ट सिद्धि करण से सफलता को प्राप्त हो । अब आप प्रभु के चरण-कमल सैन्य-गण को अलंकृत करें । मैं शीघ्र ही इन यक्षों को पेटी के अंदर रखकर और ग्रहण कर शिबिर में आता हूँ । इस प्रकार सार्थवाह के द्वारा कहे गये को सुनकर आनंदित बना राजा परिवार सहित सैन्य में आया ।

तत्पश्चात् एक बड़ी पेटी में चंदन आदि सुगंधि तैल के योग से सुगंधि की गयी और विशिष्ट अनेक चित्रों से चित्रित की गयी और सरस सुमिष्ट विविध आहारों से भरी हुई में एक मंत्री को, ऐसी उस दूसरी पेटी में दूसरे को, ऐसी ही तीसरी पेटी में तृतीय को और चौथी पेटी में चौथे को, इसप्रकार की रीति से उन चारों को उन मंजूषाओं में रखकर, द्वार को अर्गल देकर, अपने सेवकों से उन चारों पेटियों को भी उठवाकर सभा में लाकर राजा के आगे उपहार की । और इस प्रकार कहने लगा कि- हे स्वामी ! जिनकी ग्रहण करने की इच्छा अत्यधिक हुई है, ऐसे अति-महान्, सकल अभीष्ट फल देनेवाले और पेटी के अंदर रहे हुए वे ये यक्ष लाये गये हैं, ये यक्ष सदा ही आपके समीप में ही रहे और आपके समस्त वांछितों को पूर्ण करे । अथवा

जैसे विधाता का भुज-दंड सृष्टि की रचना करता है, वैसे ही प्रभु के द्वारा माँगे हुए सर्व अर्थों को यें साधे । परन्तु ये यक्ष कार्य-काल में ही सद्-अवसर में पूजे जाते है और उससे इतर काल में अर्चा आदि विधान से फल को नहीं देते हुए क्रोध करते है, इसे आप सत्य जानो।

इस प्रकार सुनकर राजा ने उसे ऐसा कहा कि- हे सार्थवाह ! तूंने अति कठिनाई से प्रास हो ऐसे इन यक्षों को देकर यावज्जीव गाढ़ भी इस स्नेह को अचल किया है । इहलोक में बाह्य-वृत्ति से स्वार्थ एक ही साधने में रत अनेक मनुष्य कृत्रिम स्नेह को करते ही है, ऐसे झूठे मित्रों की संख्या लोक में अधिक ही है, किन्तु आन्तर और बाह्य उभय वृत्ति से अकृत्रिम स्नेह-प्रेमकारी तुझ जैसा जन विरल ही मेरी दृष्टि पर चढ़ रहा है । जो कि चिर समय के बाद आगमन से और अपने गृह-पत्नी आदि के मोह से अब तुम्हारा यही पर रुकना योग्य है, तो भी मन के वात्सल्य से तुझे मैं साथ में ही ले जाना चाहता हूँ। जिससे कि गुणों में अनुरागी, सद्भावों का पात्र और अति-स्नेह से युक्त तुझ मित्र को क्षण के लिए भी अलग करने के लिए मेरा हृदय समर्थ नहीं हो रहा है । प्रेम को क्या अकार्य है ? जैसे कि- प्रेम अथवा स्नेह को अकार्य क्या है ? कुछ भी नहीं है । इसे ही इस प्रकार से दर्शाते हुए कहते है कि जो भवानी पूर्व में सर्प की कथा अथवा नाम से भी डरती थी, वही भवानी अब शिव के शेष-नाग की फणा को हमेशा तकिया कर सोती है ।

इस कारण से तुझ समान सुमित्र के द्वारा भी मेरे लिए अकार्य भी आचरणीय ही है । और वियोग के होते पुनः गुणवंत मित्र की संगति हो अथवा न हो, कौन जाने ? इसलिए तुम अब मेरे संगम को मत छोड़ो । अपनी स्त्री के लिए कदाचित् तेरे मन में समुत्सुकता उत्पन्न हो, अतः उसे भी साथ में लेकर चलो । सार्थवाह ने कहा-हे

प्रभु ! जन्म-भूमि का त्याग सर्व को भी क्लेश की अधिकता को उत्पन्न करने से दुष्कर ही है। तो भी आपके प्रेम-पाश से बांधा हुआ मैं अवश्य आपके साथ आऊँगा, क्योंकि मनुष्य-पतिव्रता स्त्री को, संपदा-विपदा में तुल्य क्रियावाले मित्र को और सत्य-प्रेमवाले स्वामी को, इन तीनों को भी भाग्य के बिना प्राप्त नहीं करते हैं। इस प्रकार कहकर और अपने सदन में आकर किसी सकल गुणों से संयुक्त मित्र से गृह आदि की देखभाल आदि करने के लिए कहकर कितने ही सेवकों के साथ तथा सतीयों में श्रेष्ठ चंपकमाला सहित सार्थवाह वहाँ राजा की शिबिर में आया।

अब प्रभात के हो जाने पर राजाओं में मुकुट-मणि समान विक्रम राजा ने सैन्य सहित वहाँ से प्रस्थान किया। मध्याह्न समय में अति-श्रान्त बने सैन्यों के साथ किसी एक रम्य स्थल में शिबिर स्थापित की। वहाँ भोजन पकाने के लिए उद्यत बने रसोईयों से राजा ने कहा कि- हे रसोईयाओं ! अब भोजन पकाने से रहा, यें यक्ष ही सकल इष्ट और पर्याप्त भोजन-सामग्री देंगे। पश्चात् यथावत् अर्चन कर ज्ञान-पटु राजा विधिवत् स्नान और अनुलिंपन कर और पेटी को खोलकर, वहाँ पर स्थित यक्षों की धूप-दीप आदि सकल उपचारों से पूजा कर, अंजलि जोड़कर राजा कहने लगा कि- हे यक्षों ! तुम प्रसन्न बनो और मेरी पूजा को ग्रहण करो। जैसे पूर्व में सार्थवाह को बहु-विध और पर्याप्त भोजन-सामग्री दी थी, वैसे अब सैन्य सहित मुझे भोजन के लिए पर्याप्त रसोई अर्पण करो। आपके द्वारा अर्पित की गयी रसोई से सर्व की क्षुधा और श्रम को दूर कर और भोजन कर मैं आपकी शक्ति और निज विवेक को साफल्य करूँ।

उस अवसर पर लज्जा और पीड़ा से व्याकुल हुए वे यक्ष रूपधारी मंत्री विक्रमादित्य से कहने लगे कि- हे स्वामी ! यहाँ पर

कोई यक्ष नहीं है, जो आपको भोजन दे और हम आपके सेवक है जो पूर्व में यहाँ पर आये थें, क्या आप उन हमको नहीं पहचानते हो ? हे प्रभु ! जो पूर्व में यहाँ पर सार्थवाह-पत्नी की शील की परीक्षा के लिए आये थें, आपके साथ क्रीड़ा करनेवाले वे मन्त्री हम ही हैं । जैसे खेत में धान्य की रक्षा के लिए और घर के ऊपर उल्लू के निरोध के लिए पुआल का पुतला रखते है, वैसे ही इस बड़े सार्थवाह ने खेत में रहे हुए पुतले के समान हमें यक्ष कीये हैं, हमें आप सत्य रूप से यक्ष न माने, किन्तु कार्य के विशेषता से उस सार्थवाह ने व्यर्थ ही यक्ष कीये हुए हम यहाँ रहे हुए हैं । नाम-मात्र से कभी-भी असत्-वस्तु सत्यता को नही प्राप्त होती है, होली के पर्व में लोगों के द्वारा की गयी राजा की आकृति के समान तात्त्विक-रूप अथवा वास्तविक उस कार्य को प्राप्त नहीं करती है । हे प्रभु ! आपके प्रसाद-फल रूप दास -दासी आदि सकल सुख सामग्री को प्राप्त करके भी हम इस सार्थवाह के घर में किंकर के समान पूर्व-कृत कर्मों के योग से अन-अनुभूत समस्त कष्ट को सहन किया है । उस कारण से हम देवता नही हैं, किन्तु पूर्व में संपादित की गयी गृह-लक्ष्मी का विनाश करनेवाले आपके सेवक ही हैं । इसलिए भाग्य-वश से कैसे भी प्राणों को धारण करते आप हमें ग्रहण करो, कृपा करो और पूर्व के समान प्रसन्न बनो । पहले भी हमने जो अपराध किया था, आप उसे भी क्षमा करो ।

इस अवसर पर प्रेम और अनुकंपा से पूर्ण बना हुआ राजा उनको देखकर और उनके समस्त सत्य वृत्तांत को सुनकर तथा उन्हें पेटियों में से बाहर निकालकर, रसोईयें को पकाने का आदेश दिया । पूर्व में जो राजा के प्रधान-प्रेमपात्र हुए थें और जिनको प्रेम की दृष्टि से देखता था, उनको अब ऐसी दुर्दशा को प्राप्त होते देखकर, राजा

मधुर वाणी से पूछने लगा कि- हे मित्रों । अति-भीषण दुष्काल के अन्न-अभाव से रंक के समान अस्थि-मात्र अवशेष रहे हुए और अति-दुर्बल कैसे हुए हो ? पूर्व में तुम मदन के समान सुंदर आकारवाले थें, अब असाध्य दुर्व्याधि से हुए शरीर के लावण्य-ह्रासवालें कैसे दीखायी दे रहे हो ? किस के द्वारा और कहाँ ऐसी शोचनीय दशा को प्राप्त हुए हो ? इस प्रकार राजा के द्वारा पूछे हुए वें मंत्री पूर्व में अनुभव कीये गये सुख को बार-बार स्मरण करते हुए संध्या-वेला में चक्रवाक-पक्षियों के समान दोनों नेत्रों से अश्रुओं को छोड़ते हुए मौन-पूर्वक स्थित हुए थें ।

पुनः वे मंत्री राजा की प्रेरणा से लज्जा को छोड़कर गद्-गद् वाणी से सर्व वृत्तांत आद्यन्त तक राजा से कहने लगे कि- हे स्वामी! जैसे कोई अज्ञ स्त्री त्रिजगत् को पवित्र करनेवाली गंगा को अपवित्र करने की इच्छा करती है, वैसे ही सत्-शीलशालि इस सती को दुःशीला करने के मनवाले, उसकी प्रख्याति को सहन नहीं करते हुए और उसकी असूया से अत्यंत पापी ऐसे हम स्वयं ही उस बड़ी खाई में गिर पड़े थें, किन्तु किसी के द्वारा नहीं डाले गये है, वहाँ लेश भी इस सती का दोष नहीं है, और जो वहाँ इस श्रेष्ठ सती ने उत्पन्न हुए अत्यंत कारुण्य से निरंतर अन्न-पानी के प्रदान से हमारे जीवन को धारण कराया है, वह महा-आश्चर्य हुआ है । जो नरक-उपमावाले उस खाई में गिरे हुए हमारे द्वारा उस सती शिरोमणि ने कदन्न को खिलाया है, उससे मैं मानता हूँ कि प्रबलतर उत्पन्न हुए काम-रोग का उपशम किया है, वैसे काम-समूह के उन्माद का अपहरण करनेवाले उसके द्वारा कीये गये उपचारों के समूह से जो हमारे शरीर में कृशता हुई है, वह भी भविष्य में गुणकारी शिक्षण ही है, इस प्रकार हम मानते हैं।

इस प्रकार उन मंत्रियों के मुख से चंपकमाला के गुण-समूह की स्तुति को सुनकर विस्मय से व्याप्त हुए चित्तवाला, सार-ग्राही और गुण-वित् राजा प्रमोद-भर से उसकी इस प्रकार से स्तुति करने लगा कि- अहो ! अब भी स्त्री-जाति में ऐसी मति-समूह की निधि, कौशल्य में पटु, महान्, सती स्त्री है । इसका चातुर्य अत्यंत प्रशंसनीय है, यह धन्य है जो त्रिकरण से विशुद्ध, उत्तम शील का रक्षण कर रही है । इस जगत् में काया से भी शील का पालन कठिन है, उससे भी अति-कठिन वचन से शील-पालन है, और इन दोनों से भी मन से शील का पालन सर्वथा लोकोत्तर ही है । क्योंकि मन-विकार रूपी अंकुर उद्गमन को बढ़ाने में मेघ तुल्य स्वास्थ्य अवस्था जिसके चित्त में नष्ट हो चुकी है और जिसे निरंतर भर्त्ता-वियोग रूप अग्नि अति संतापित कर रहा है और जिस विद्युत्-के समान सफेद वर्णवाली स्त्री का अति-मनोहर और नूतन तारुण्य जो दर्शन से ही युवा-जन के मन को लोभी करने में समर्थ है, ऐसा वह स्फुरायमान हो रहा है और जिस स्त्री में सर्व सद्-गुण और कलाएँ विद्यमान हैं, बहुत लक्ष्मीयाँ विलास कर रही है और समीप में आये काम-किंकर हुए कामी प्रार्थना कर रहे हैं, सासु आदि गुरु-जन के अभाव होने पर भी, दर्भ के अग्र-भाग के समान मतिशालिनी यह चंपकमाला जो अनुपम, विशुद्ध शील को धारण कर रही है, वैसे अन्य कौन शील को धारण करे ? अर्थात् कोई भी नही । इसलिए ही यह धनवान् सार्थवाह धन्यवाद योग्य है, जिसकी ऐसी शीलशाली, जगत्-जन को पवित्र करनेवाली स्त्री शोभ रही है । शील के पालन से जो स्त्री सीता आदि पुण्य-स्त्री की साम्यता को प्राप्त करती है, रूप की शोभा से रति को भी लज्जित कर रही है, बुद्धि से सरस्वती तुल्य है, उस इस सती-शिरोमणि को देखते हुए जन भी धन्य है, इस प्रकार यह हम

निश्चय से कहते हैं । इस प्रकार प्रशंसा कर और तत्क्षण उस सार्थवाह को बुलाकर, हँसकर राजा उसे कहने लगा कि- हे मित्र ! तूंने अति-अद्‌भुत यक्षों को मुझे समर्पित किया है । जिसने अपनी बुद्धि और चातुर्य से इन दुर्बुद्धिवाले, ठग और लज्जा-रहित मंत्रियों को शिक्षित किया है, वह तेरी प्रेयसी, अति श्रेष्ठ सती चिर-आयु हो । और जिस महा-सती की वाणी को तरु-लता आदि अचेतन भी उल्लंघन करने के लिए समर्थ नहीं होते हैं, उस सती के अतुल प्रभाव से ये मंत्री अपनी शठता को छोड़े, वहाँ कौन-सा आश्चर्य हैं ?

इस प्रकार विक्रमादित्य राजा और उसके इतर सभ्य-लोग भी उस सती की बहुत प्रकार से प्रशंसा करने लगें । यह योग्य है, क्योंकि गुण के योग से कौन सज्जनों के द्वारा प्रशंसित नही कीये जातें हैं ? उस परीक्षा से सर्व दिशाओं में व्यास हुई शोभाशाली सतीयों में प्रधान चंपकमाला सतीयों की गणना में प्राथम्य में आई । उस दिन से चंपकमाला का सतीत्व माहात्म्य सर्वत्र लोक में बढ़ने लगा । चन्द्र की सुधामयी कला के समान, सती चंपकमाला लोगों को आह्लादित करनेवाली और सुखावह हुई । तत्पश्चात् वसन्त-ऋतु में जैसे काम वन में वैसे ही विक्रमार्क राजा उस सार्थवाह के साथ अनुक्रम से उज्जयिनी में आया । उस सती चंपकमाला से खेद सहित उन चारों मंत्रियों ने भी कीये गये अपराध की क्षमा माँगकर अपने-अपने सदन जाने के लिए उत्सुक हुए थें । तब उनको दाताओं में शिरोमणि ऐसी चंपकमाला ने भी पूर्व में अंगीकार कीये हुए धन को हर्ष पूर्वक प्रत्यार्पण किया । उसने वैसे उन मंत्रियों को सुधा-स्यन्दिनी वाणी से उपदेश दिया, जिससे उन्होंने तत्काल ही पर-स्त्री क्रीड़ा करने की इच्छा को छोड़ दी थी । अहो ! महासती, विदुषी की महिमा अत्यंत महान् होती है, जिससे उन अनार्य मंत्रियों को भी आर्य बना दीये ।

पश्चात् कुल-देवी के समान उस सती चंपकमाला को बार-बार नमस्कार कर और उसके उदार गुणावली को गाते हुए वें चारों मंत्री स्वस्थ होते हुए अपने-अपने महल को प्राप्त हुए । उस महासती की संगति से सार्थवाह भी सुशीलता को प्राप्त हुआ ।

अब एक दिन उस उज्जयिनी-नगरी में भव्य-जीवों को पवित्र करने के लिए तथा सुख के लिए श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वर आये । उसे सुनकर मेघ-आगमन से मयूर के समान आनंदित होते हुए, पुलकित हुए रोम राजीवाला राजा अत्यंत हर्षित हुआ । तत्पश्चात् बड़ी ऋद्धि से शुभ भावना से भावित मनवाला राजा गुरु-वंदन के लिए निकला । उस अवसर पर उसके लिए राजा के साथ इतर भी महान् जन हजारों की संख्या में गये थें । इसी अवसर पर अपने सुजन जन मंडल से मंडित और प्रिया सहित सार्थवाह भी धर्म देशना को सुनने की इच्छा से वहाँ आया । तब भव्य-जीव रूपी कमल-वन को विबोधित करती हुई और अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करती हुई, अमृत को बहानेवाली धर्मदेशना को सूरि दिवाकर ने प्रारंभ की, जैसे कि-

हे भव्य-जीवों ! इस दुःख रूपी दावानल से संतप्त हुए संसार में संपत्तियाँ, पाद-रज के समान क्षणिक हैं और यह तारुण्य पर्वत से उत्पन्न नदी के वेग समान है अर्थात् नदी का वेग बड़ा होता हुआ भी चिर-स्थायी नहीं होता, वैसे ही जीवों का तारुण्य भी चिर-स्थायी नही हैं । तथा अति-दुःख से प्राप्य यह मनुष्य-जन्म भी जल-बिन्दु के समान अति-चंचल है और लोगों का आयुष्य भी समुद्र के फेन के समान विनश्वर है । इस कारण से जो दृढ-चित्तवाला मनुष्य स्वर्ग के अर्गल को उद्घाटन करनेवाले के समान धर्म का आचरण नहीं करता, वह मनुष्य पश्चात्ताप से हत हुआ और

वृद्धावस्था से शिथिल बने संपूर्ण अवयवोंवाला शोक रूपी अग्नि से दुःखित किया जाता है ।

यें भोग किंपाक-फल के समान आदि में मधुर और अवसान में नीरस होते हैं । ये भोग कच्छू के संपर्क से उत्पन्न खुजली के समान दुःख-जनक हैं और वास्तविक सुख विषयिणी बुद्धि को दिलाते हैं । मध्याह्न समय में मृगतृष्णिका के समान मिथ्या-अभिसन्धिवाली बुद्धि को देते हैं । और प्रबल शत्रु के समान यें भोग भोगने पर नीच-कुल आदि में जन्म से गहन ऐसी भव-परंपरा को भोगनेवाले प्राणियों को देते हैं । इसलिए महा-शत्रु तुल्य ऐसे भोग सज्जनों के द्वारा कभी-भी नहीं भोगने चाहिए, यह तात्पर्य है ।

कितने ही जन धनार्जन करने के लिए मगर-मच्छ आदि भयंकर जल-जन्तु समूह से आकुलित बने अगाध समुद्र को पार उतरकर भी व्यापार करते हैं, और अन्य कितने ही ऊँचे उठाएँ गये शस्त्रों के प्रहार से उत्पन्न अग्नि-कणोंवालें युद्ध में प्रवेश करतें हैं तथा अन्य कितने ही शीत पानी से और उष्ण पवन से म्लान बनी तनु-लता से उनके कीये क्लेश को सहन करते हुए खेतों को जोते हैं, पुनः अन्य कितने ही अनेक भेदवाले शिल्प को करते हैं और अन्य कितने ही नाटक आदि करते हैं । इसप्रकार धन के उर्पाजन में महान् ही क्लेश दीखायी देता है और लेश-मात्र भी सुख नहीं दीखायी देता है । इसलिए ही-

हे लोगों ! जीवों की हिंसा मत करो, पाप के अन-अनुबंधवाली सत्य वचन को बोलो, सर्वथा चौर्य को छोड़ो, प्रयत्न से अन्य-वधूओं के संग को छोड़ो, इष्ट विभव के ऊपर इच्छा-परिमाण करो, महा-अनर्थकारी क्रोध आदि दोषों को छोड़ो । यदि अतिशय से सर्वाधिक सौख्य में तेरी इच्छा है तो वीतराग प्ररूपित

धर्म के ऊपर प्रीति करो ।

जैसे दिशा की भ्रान्ति से, रात्रि के अंधकार की अधिकता से अथवा मार्ग की विस्मृति से कोई मूढ़-बुद्धिवाला मनुष्य सूर्य के उदय होने पर अथवा रात्रि के अंधकार-समूह के नष्ट हो जाने पर अथवा भ्रम के नष्ट हो जाने से सम्यग् मार्ग को जानता हुआ अतिशय से हर्षित होता है, वैसे ही उस गुरु की वाणी से मोह रूपी अंधकार के ध्वस्त हो जाने से भव्य-जीव यथावत् धर्म-मार्ग को जानकर निःसीम आनंद को प्राप्त हुए थें । तब प्रनष्ट हुए मोह रूपी अंधकारवाला, विद्वान्, अति पटु और अति-विशिष्ट आशयवाला लघु-कर्मी सार्थवाह गुरु से इसप्रकार कहना प्रारंभ किया कि- हे प्रभु! मैं आज तक तत्त्वावबोध के बिना व्यर्थ ही खुद को पंडित मान रहा था । क्योंकि तत्त्वावबोध के बिना कला रूपी नदीयों के पार पहुँचनेवाले जीव को भी मूर्खता नहीं छोड़ती है । आज ही आपके अमृत के समान उपदेश से जो अज्ञान रूपी रोग को दूर करने के लिए महान् औषधि तुल्य है, उससे मुझे तत्त्वज्ञान लक्षण रूपी निरोगता उत्पन्न हुई है अर्थात् अज्ञान नष्ट हुआ है और तत्त्व-ज्ञान उत्पन्न हुआ है । जो कि मैं सकल सावद्य हेय लक्षण रूपी सर्वोत्तम साधु-मार्ग को ग्रहण करने की इच्छावाला हूँ, तो भी उसके रक्षण के लिए मुझ में उतनी शक्ति नहीं हैं । इसलिए ही सम्यक्त्व-मूलवाले द्वादशव्रत से लक्षित श्राद्ध-धर्म को मेरे ऊपर प्रसन्न होकर स्त्री सहित मुझे उपदेश करे । इसप्रकार भक्ति-भर से उसके द्वारा कहा हुआ सुनकर उन सूरिदिवाकर ने भक्तिमंत, श्रद्धालु, विनीत सुशिष्य को मंत्र के समान, पत्नी सहित उस सार्थवाह को श्रावकों के बारह व्रत का उपदेश दिया। पश्चात् अपने को कृतकृत्य मानता हुआ सार्थवाह भार्या सहित अपने घर में आकर अपने इष्ट देव के समान धर्म को

करने लगा ।

तत्पश्चात् यह सार्थवाह शंका आदि दोषों से रहित, उज्ज्वल सम्यक्त्व सहित, दोषों से मुक्त और अणुव्रत-स्वरूपवाले श्राद्धव्रत का पालन करता हुआ और साधुओं को विशुद्ध अन्न-पानी, वस्त्र, पात्र आदि से प्रतिलाभित करता हुआ, सद्-ध्यान को धारण करता हुआ सकल श्रावकों में श्रेष्ठ हुआ । उसकी पत्नी महासती चंपकमाला भी सत्-शील के सौरभ्य से शोभित हो रही थी । प्रकृति से उदार-चित्तवाला होता हुआ भी परम-उदार उक्ति से प्रेरित हुआ और प्रमोद से युक्त इस सार्थवाह ने सद्-उपार्जन की गयी अपनी लक्ष्मी को सात क्षेत्रों में बोता हुआ सार्थकता करने लगा । अत्यधिक धन के व्यय से नूतन चैत्यों का निर्माण कर, उन चैत्यों में बहुत द्रव्य के व्यय से बड़े उत्सव के साथ अरिहंतों की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करायी । कितनें ही अत्यंत जीर्ण चैत्यों का उद्धार कराया । तथा जिनशासन के उपयोगी विविध पुस्तकों को लिखवायी । चतुर्विध श्रीसंघ की भक्ति भी की थी । अब इस धर्म-मतिवाले सार्थवाह ने चिर समय तक जीवों को जीवित करने की इच्छा से अत्यंत दुष्ट और हिंसक मच्छीमारों की मत्स्य-घात वृत्ति भी राजा से छुड़वायी । अर्थात् जैसे कोई भी कदापि मत्स्य आदि अबल जीवों को न मारे, इस प्रकार राज-नियम को कराया था । इस सार्थवाह ने अपने विशाल भाल रूपी पट्ट पर उत्तम ऐसे संघाधिपति तिलक को धारण किया । और सिद्धाचल-गिरनार आदि महा-तीर्थों में गमन-प्रभु दर्शन और सुनमन आदि कीये थें । इस प्रकार स्त्री सहित सार्थवाह श्राद्ध-धर्म का आश्रय लेकर अर्हत्-शासन की वृद्धि में तत्पर, कीये हुए अभिग्रह को यथावत् पालन करता हुआ, अंत में वें दोनों दंपती समाधि-मृत्यु से सद्गति को प्राप्त हुए । क्योंकि भगवान् अर्हत् के चरण-कमल की

सेवा करनेवालों की ऐसी ही गति होती है । उससे भव्य-आशयवाले सर्व के द्वारा शील के रक्षण के लिए प्रयत्न करना चाहिए । और सम्यग् रक्षण किया गया यह ही सत्-प्राणियों को चिंतामणि के समान लौकिक सर्व सुख आदि दिलाता है और अन्त में अजरामर-गति को प्राप्त कराता है । कल्याण हो ।

यावज्जीवन निर्दोष शील का परिपालन कर, पति-व्रता स्त्रियों में अग्रगण्य उस चंपकमाला ने इस जन्म में निरुपम, निर्मल यश को प्राप्त किया है । उसके समान जो कोई अन्य भी अखंडित शील का परिपालन करेगा, वह मनुष्य निश्चय से लोगों के द्वारा स्तुति किया जाता हुआ सत्कीर्त्ति का पात्र बनेगा ।

लोक में प्रसिद्ध श्री सौधर्म बृहत्तप नामक निर्मल गच्छ के स्वामी तथा जगत्-जयी श्री राजेन्द्रसूरि के दोनों चरण-कमलों में सदा, आनंद से यतीन्द्रमुनि के द्वारा रचित इस गद्य प्रबन्ध चंपकमाला के चरित्र में यह निर्मल चौथा प्रस्ताव संपन्न हुआ ।

इस चंपकमाला चरित्र को विक्रमाब्द १९८५ में चैत्र शुक्ल द्वितीया के दिन संपूर्ण किया ।

श्री कयवन्ना-चरित्रम्

त्रिशला के पुत्र, प्रपूज्य और पवित्र श्रीमान् वर्द्धमान जिनवर को और सुविद्वानों में प्रवर निज गुरु के दोनों पादारविन्दों को बार-बार नमन कर, पृथ्वी-तल पर पूजित और बोधि-बीज देनेवाले, सद्-गद्यमय और अति-सुंदर भव्यात्म के हृदय की तुष्टि के लिए मैं यतीन्द्रमुनि इस सच्चरित्र का निर्माण कर रहा हूँ।

इस भरत-क्षेत्र में पूर्व-दिग् विभाग में सकल-ऋद्धिशाली और समृद्धिशाली-जन और समस्त भोग्य-पदार्थों से परिपूर्ण राजगृही नामक प्रख्यात नगरी है। उस नगरी में रामचंद्र के समान न्याय-निष्ठ श्रेणिक नामक राजा हुआ था। इस राजा के पाँच सो प्रधानों में मुख्य श्री अभयकुमार नामक मंत्रीश्वर हुआ था। उसी नगरी में श्रेष्ठी धनदत्त नामक प्रधान व्यापारी निवास कर रहा था। इस श्रेष्ठी को तारुण्य में कोई सन्तति उत्पन्न नहीं हुई, किन्तु भाग्य-योग से चरम वय में एक पुत्र उत्पन्न हुआ। तब श्रेष्ठी को पुत्र के जन्म से कोई असीम ही प्रीति उत्पन्न हुई। इसलिए ही पुत्र के जन्म में विविध महोत्सव करते हुए छह दिन बहुत दान को देते हुए प्रमोद से भरे श्रेष्ठी ने बारह दिन हो जाने पर जन्म को प्राप्त पुत्र का बड़े महोत्सव के साथ कयवन्ना नाम दिया। उस पुत्र के ललाट-पट्ट पर कोई अद्भूत ही भाग्य-रेखा दीप्यमान हो रही थी। यह बालक शुक्ल-पक्ष में चंद्र के समान बढ़ने लगा। पाँच वर्ष के होने पर पिता के द्वारा लेखन-शाला में प्रवेश कराया गया। अति-अल्प काल में ही उसने सर्व विद्याओं में निपुणता प्राप्त की। यह प्रति-दिन विद्या-विनोद से ही काल को व्यतीत करता हुआ और माता-पिता के मन को आह्लादित करता हुआ तथा निरंतर ही मन से शुभ भावना को

करता हुआ वैराग्य-वासना के प्रवाह में निमग्न हुआ। लेश-मात्र भी उसका मन व्यावहारिक और लौकिक कृत्य में नहीं लग रहा था। केवल साहित्य-चर्चा और उसके अभ्यास में ही सुख मान रहा था। जो कि कहा है कि- बुद्धिमंतों का काल काव्य-शास्त्र विनोद से व्यतीत होता है और मूर्खों का व्यसन से, निद्रा से अथवा कलह से व्यतीत होता है।

तत्पश्चात् पिता ने बड़े महोत्सव के साथ इसका विवाह कुलीन, रंभा जैसी और सकल कलाओं में कुशल ऐसी जयश्री से किया। परन्तु तारुण्य से पूर्ण होते हुए भी इस पर उसने लेश-मात्र भी मनो-वृत्ति नहीं दी। केवल अपने वैराग्य वासना की घातिनी ही मान रहा था। इसलिए कदापि उस जयश्री को प्रेम-भर से रहस्य में न ही आलिंगन किया, न ही देखा अथवा न ही कुछ बात की। काम की राजधानी जयश्री प्राण-नाथ को आत्म-सात् करने की इच्छा से हमेशा कटाक्ष से देखना तथा स्मित-पूर्वक मधुर आलाप आदि हाव-भावों को करती थी, किन्तु इसके समस्त उपाय ऊषर-भूमि में बीज-बोने के समान हुआ था। उससे वह जयश्री यह सर्व ही अपनी सासु से कहने की इच्छा करने लगी। जो कि लोक में कितनी सासु यह पर-पुत्री है इस प्रकार मानकर दिन-रात वधू को दुःखित करती है, दुष्कर भी दासी आदि कार्य को उससे ही कराती है और वैसी सासु सदा ही उस वधू के साथ कलह करती है। जगत् में वैसी भाग्यशाली वधू अल्प ही है, जो वैसे कलह से उत्पन्न पीड़ा का अनुभव नहीं करती। यदि भर्त्ता की वैसी भाई अथवा बहन हो तो वधू वैसी उस पर कितने सद्-भाव को करे, यह विज्ञ जन स्वयं ही विचार करें। इस जयश्री की सासु वैसी नहीं थी, वह सदा ही अपनी वधू को मधुर वचन से बुलाती थी, स्नेह से युक्त दृष्टि से ही देखती थी और अपनी

पुत्री के समान ही लालन करती थी, अवसर आने पर सुख-दुःख की बात भी पूछती थी, उसे उत्तम भोजन देकर ही स्वयं भोजन करती थी, क्रोधित होती हुई भी उसने कभी-भी अपनी वधू को भौवें अथवा क्रूर दृष्टि नहीं दीखायी थी। उस पर लेश-मात्र भी पति का अनुराग नहीं है, इस प्रकार जानती हुई भी परंतु इस बात से वधू को बहुत दुःख होगा, इस प्रकार की बुद्धि से वह उसके आगे कभी-भी उस बात को नहीं करती थी।

अब एक दिवस निःतेज मुखवाली और चिन्तातुर जयश्री को देखकर सासु ने पूछा कि- हे वत्से ! आज तेरा यह मुख-चन्द्र शोक रूपी राहु से ग्रस्त प्रायः क्यों दीखायी दे रहा है ? क्या तुझे माता-पिता स्मृति-पथ पर आये हैं ? अथवा किसी अपूर्व वस्त्र या आभूषण को पहनने की इच्छा करती हुई उत्सुकता को वहन कर रही हो ? अथवा किसी दास-दासी ने तेरी आज्ञा को तोड़ी है ? अथवा मेरे पुत्र ने तेरी अवज्ञा की है ? हे वत्से ! मैंने सदा ही तेरे मुख को प्रसन्न देखा है, वह ही आज कैसे चिन्तातुर और निस्तेज दीखायी दे रहा है ? तुम सत्य जानो कि मैं तेरे सुख और दुःख से ही सुखिनी और दुःखिनी हो रही हूँ तथा मैं तुझे पुत्री से भी विशिष्ट जान रही हूँ, इसलिए लज्जा को छोड़ तुम मुझसे शोक का कारण कहो, क्योंकि अज्ञात दुःख की कोई चिकित्सा नही होती है।

इसप्रकार सासु का कहा सुनकर जयश्री कहने लगी कि-हे सासु ! आपकी कृपा से मुझे सकल सुख साधन की सामग्री है और माता-पिता का वियोग मुझे लेश-मात्र भी बाधित नहीं कर रहा है तथा दासी आदि वर्ग भी हर्ष सहित मेरे आदेश को सिर से वहन कर रहा है और मुझे वस्त्र-आभरण आदि की भी इच्छा नहीं है। दुःख का कारण तो अन्य ही है जो आप जैसी गुरु-जन के आगे कहने के लिए

भी लज्जित हो रही हूँ और नहीं कहने से मन में खेद ही उछलता है, वह भी मुझे चिर समय से अति-पीड़ित कर रहा है । निरंतर मेरे मंगल को करने की इच्छावाली आप आज अति-आग्रह से पूछ रही हो, इसलिए चिर-दुःखिनी मैं आप से कह रही हूँ कि वैसा अन्य कोई दुःख-हेतु नहीं है, किन्तु स्वामी की अकृपा ही महान् दुःख है ! हे माता ! मैं आप से अधिक क्या कहूँ ? आज पर्यंत उसके समीप में बार-बार गयी हुई भी मुझे एक बार भी नहीं बुलायी है । अहो ! बोलना तो दूर रहो, स्नेह से कदापि देखा भी नहीं है, ज्ञान से अथवा अज्ञान से मैंने आज-तक उनका अविनय नहीं किया है, निरंतर प्रेम-सहित उनके अनुकूल ही आचरण कर रही हूँ, फिर भी वज्र से भी अति-कठिन उनका हृदय मुझ निरपराधि अबला पर आज तक प्रसन्न नहीं हुआ है । आपके शिशु ने हँसकर भी एक बार मुझसे आज पर्यंत आपके गृह में आगमन के पश्चात् बात नहीं की है । हे पूज्ये ! जिस सुख की इच्छा करती हुई मैं अपने माता-पिता और सखी को छोड़कर आपके घर में आयी हूँ, उस सुख के अलाभ में मैं किसके आगे पूत्कार करुँ ? क्या मुझे उसके बिना कोई अन्य सुख करनेवाला संभवित है ? जिसमें वैसी सुख-आशा को करुँ । यदि ऐसी ही दुःस्थिति चिर समय तक रहे तो बाल-विधवा से भी अधिक दुःख को अनुभव करुँगी । आप सिर के छत्र समान हो, इसलिए सहन करने में अशक्य मेरे दुःख को जानकर शीघ्र ही उसके निवारण उपाय को कर मुझे नया जीवन प्रदान करे ; जिससे मैं आगे पुनः ऐसे दुःख से युक्त न बनूँ। जब इससे आगे वह कहने की इच्छा करती है, तब अनुभव कीये गये दुःख के अतिरेक से विदीर्ण हृदयवाली बनी वह जयश्री केवल अश्रु-धारा को ही छोड़ने लगी थी ।

इस प्रकार रोती हुई पुत्र-वधू के शोक से शोकाकुलित बनी

सासु भी क्षण-भर रोकर और वधू के आँसुओं को दूर कर उससे कहने लगी कि- हे वत्से ! तुम शोक मत करो और तेरा यह दुःख सुननेवालों को भी दुःसह मैं मान रही हूँ और जो तेरी विद्वेषिणी है, कभी-भी वह भी ऐसे दुःख का अनुभव न करे । ऐसे सर्व-ऋद्धिवाले घर में आकर भी तुम अंदर रहे दुःख रूपी अग्नि से जलायी जाती हो, उसे देखने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ । इसलिए तुम धीर बनो और दुःख को छोड़ो । मैं आज से ही तेरे दुःख-विघात के लिए प्रयत्न करुँगी, इसे तुम सत्य जानो । जिससे शीघ्र ही मैं सर्व मनो-दुःख को दूर कर तुझे सुखिनी करुँगी, इसलिए अब तुम निश्चिंत बनो । जब तक तुझे दुःख है, तब तक मैं दुःख का ही अनुभव कर रही हूँ, लेश-मात्र भी सुख प्राप्त करने के लिए योग्य नहीं हूँ । इस प्रकार पुत्र-वधू को आश्वासित कर और तभी वह अपने पति के समीप आकर शोकातुर बनी स्थित हुई ।

अब म्लान-मुखवाली इसको देखकर धनदत्त श्रेष्ठी थोड़ा आशंक हुआ था । दुःख के अतिशय से स्तब्ध हुई वह भी कुछ-भी कहने में समर्थ नहीं हुई । उतने में धनदत्त ने कहा कि- हे प्रिये ! आज तेरा यह मुख खेद-सहित कैसे दीखायी दे रहा है ? क्या कोई उत्पात हुआ है ? अथवा क्या अमंगल हुआ है ? जिससे तूं ऐसे म्लान-मुख को धारण कर रही हो । तुझे ऐसी देखकर मुझे बड़ा संशय उत्पन्न हो रहा है, इसलिए शीघ्र ही मन में रहे हुए दुःख का कारण कहो ।

इस प्रकार पति का कहा सुनकर पुनः शोक से व्याकुलता को प्राप्त हुई अत्यंत रोती हुई धैर्य का आलंबन लेकर वह कहने लगी कि- हे प्रियतम ! वधू सदा ही गृह में दुःख को भोग रही है, क्या आप उसे नहीं जानते ? जो कि उसको जानते हुए आपको मैं जो उस विषय में कह रही हूँ वह पिष्ट-पेषण ही है, परन्तु वह असह्य कष्ट ही कहने

की प्रेरणा कर रहा है । जो कि मुझ समान बुद्धि से विकल और स्त्री-जातीय आप जैसे मतिमंत को कुछ-भी उपदेश दे, इस प्रकार यह घटित नहीं होता है, तो भी अन्य गति नहीं मिलने से वह मेरे द्वारा कथनीय ही है, अन्यथा बड़ी हानि होने की संभावना है । हे स्वामी! तुम देखो, तुम देखो, इस चरम वय में हम दोनों को एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ है और समृद्धि अत्यंत विद्यमान है, परन्तु व्यवहार में अथवा विषय में लेश-मात्र भी पुत्र की कुशलता नहीं देखी जाती है और त्यागी के समान हमेशा वैराग्य शास्त्र ही भावित कर रहा है । यदि आप उसको ही योग्य मानते हो तो रंभा जैसी कन्या के साथ उसका विवाह क्यों किया है ? और मेरे द्वारा वधू का ऐसा दुःख सहन करने के लिए समर्थ नहीं हुआ जाता है । व्यवहार में निपुण आप के द्वारा भी उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, इसलिए मैं प्रार्थना कर रही हूँ कि जैसे शीघ्र ही कयवन्ना सांसारिक व्यवहार में मन लगाये आप वैसा प्रयत्न करो । यहाँ आलस्य मत करो और जैसे तरुणी पत्नी ऊपर अनुरागी हो वैसे शीघ्र से करो ।

अब स्त्री द्वारा कहे गये वचनों से धनदत्त ने इसकी कितनी बुद्धि है? इस प्रकार परिमाण किया और स्त्रियों में नैसर्गिक मति-मान्द्य का प्रतिपादन करनेवाले नीति-वाक्यों में प्रामाण्य को ग्रहण करने लगा। इस अवसर में उसे समझाने के लिए श्रेष्ठी ने कहा कि-हे सुंदरी ! वैषयिक लोगों को ही तुम्हारा यह वचन योग्य है, परन्तु हम दोनों का पुत्र कयवन्ना तो उसे असार ही मान रहा है और परमार्थ के विचार में रहता है । और जिसकी लक्ष्मी अति-अल्प है, वह पुरुष ही पुत्र को गृह-कार्य में और व्यवहार-कार्य में जोड़ता है और मुझे तो अपरिमित लक्ष्मी है, तो कैसे आत्म-कल्याणकारी मार्ग से उतारकर मिथ्यात्वमय प्रपञ्च में उसे गिराऊँ ? वह किसी अनुचित का

आचरण नहीं कर रहा है, किन्तु जिसके लिए महात्मा प्रयत्न कर रहे हैं, उसी को प्राप्त करने के लिए सदा ही पूर्व में कीये पुण्य-समूह के उदय से यहाँ भी अत्यंत श्रेष्ठ भावना को भावित कर रहा है, अतः तुम उसके लिए शोक मत करो । हे प्रिये ! क्या तुम यह नहीं जानती हो कि एक गृह के निर्माण में बहुत काल लगता है और उसी को तोड़ने में क्षण भी नहीं लगता और इस प्रकार से ही शाश्वत-सुखप्रद निवृत्ति-मार्ग में प्रवृत्ति भी कठिन ही है, क्योंकि अत्यंत पापी जन उस मार्ग में प्रवर्त्तन नहीं करते है, किन्तु पुण्यशाली ही प्रवर्त्तन करते है और भाग्य-योग से वहाँ प्रवर्त्तन करनेवालें सर्व का अधःपतन तो सुकर ही जानो, इसलिए ही सन्मार्ग में प्रवर्त्तन करते हुए पुत्र को तुम नीचे मत गिराओ और स्वयं ही जो उस मार्ग में प्रवर्त्तन करने के लिए समर्थ नही हूँ तो श्रेय मार्ग में प्रवर्त्तन करनेवाले अन्य के विघ्न करण में मैं महा-पापी और अधम-अधम बनूँगा, इसलिए हे सुभगे ! इस शुभ कार्य में पत्थर मत डाल और ऐसे असत्य विचार को मत करो।

इस प्रकार धनदत्त के द्वारा समझायी गयी भी उस वसुमती ने अपने आग्रह को नहीं छोड़ा, किन्तु रोष ही बढ़ रहा था, उससे कोप के आडंबर से वह कहने लगी कि- हे स्वामी ! आप यह क्या कह रहे हो ? अमित लक्ष्मी होने पर भी आपके समान कौन पुरुष विषय से विमुख युवान् की उपेक्षा करे ? अथवा उसके उपाय को न करे ? क्या इसके लिए ही चिर समय तक पुत्र की अभिलाषा की थी ? हा! नव परिणीत स्त्री गृह में निरंतर रो रही है और पुत्र तो यौवन में ही वैराग्य को प्राप्त हुआ है, यह मेरे धैर्य को कैसे लुप्त न करे ? इसलिए कयवन्ना पुत्र को विलासि-जन की संगति में डाले जिससे शीघ्र ही व्यवहार में निपुणता को प्राप्त करे ।

इस प्रकार पत्नी के अति-आग्रह से चतुर भी इस धनदत्त ने

अज्ञ पुरुष के समान उस प्रकार से करने के लिए स्वीकार किया। उसके बाद श्रेष्ठी ने अपने पुत्र के समान वयवालें, कितने ही विलासी युवा पुरुषों को बुलाकर शिक्षा दी-जिस प्रकार से यह कयवन्ना विषयसेवन में अत्यंत पटु हो, वैसे तुम प्रयत्न करो। तत्पश्चात् उन विषयविलासियोंने श्रेष्ठी के पास से प्रचुर धन लेकर प्रथम वसन्त-उत्सव में श्रेष्ठी के पुत्र को ले आये। वहाँ अनेक तरुणियाँ शरीर की शोभा से अप्सराओं के समान दीखायी देती अनंग को भी अंग सहित करती हुई मुनियों के भी मनों को अधीर करती हुई राग सहित गाने लगी थी। जो कि श्रेष्ठी के पुत्र ने पूर्व में कभी-भी ऐसी स्त्री-जन की लीला को नहीं देखी थी, फिर भी संसर्ग से तत्काल ही मन में चंचलता प्राप्त की। उसके बाद वे विलासी-पुरुष उसे उन स्त्रियों के संगीत स्थान पर ले गये थें। वहाँ उन स्त्रियों के नाट्य, तारुण्य, अद्भुत लावण्य, मधुर वीणा के शब्द, तथा छोटे ढोल, आदि के लय को सुनकर कयवन्ना का मन जाल में मृग के समान प्रतिबद्ध हुआ था। जैसे कि-स्त्रियों के मधुर गान से और श्रृंगार से उत्पन्न कटाक्ष आदि चेष्टाओं से, जिसका चित्त चलित नहीं होता है, वह पुरुष योगी है अथवा पशु है।

अब उस वसंत-उत्सव में कयवन्ना नाम के श्रृंगारत्व करण में युवतियों का नृत्य और हाव-भाव आदि ही पर्याप्त हुआ था। वहाँ से लेकर वैराग्य-भावना उसके मन को छोड़कर दूर चली गयी और केवल श्रृंगार ने ही घर किया। बहुत कहने से क्या ? उनमें आसक्त उसे खान-पान आदि की भी विस्मृति हुई। पश्चात् उन मित्रों के साथ वह वेश्या-घर में आकर उसके हाव-भाव आदि से काम-किंकर हुआ। क्योंकि ज्ञान और अज्ञान के समान वेश्या और विवेक में बड़ा अंतर है, तो उस वेश्या के घर में निवास करते जन को भक्ष्य-

अभक्ष्य, पेय-अपेय आदि की अपेक्षा कदापि संभवित नहीं है । इस वेश्या ने श्रेष्ठी-पुत्र को वशवर्ती बनाकर मदिरा-पान आदि से प्रमत्त हुए उसके साथ हमेशा स्वेच्छा से क्रीड़ा करने लगी । अहो ! कुसंग के दोष से व्यक्ति क्या-क्या नहीं आचरण करता है ? जो कि कहा है कि- यह कुसंगति आनंद रूपी हिरण के लिए दावाग्नि समान है, शील रूपी वृक्ष के उन्मूलन में मत्त हाथी के समान है और ज्ञान रूपी दीपक को बुझाने में महा-वायु समान है, इसलिए ही कुसंगति से पुरुष के शील-विवेक आदि गुण नष्ट हो जाते है, इसलिए ही नीति-वाक्य बार-बार बुला-बुलाकर लोगों को बोधित करते है कि- हे भव्यों ! तुम कुसंगति आदि दोषों से सत्संगति को मत छोड़ो।

अहो ! कहाँ गोपीचन्द्र की मौनवती माता और कहाँ कयवन्ना की माता वसुमती ? इन दोनों में मेरु-सर्षप के समान अंतर हैं । जिससे कि उस मौनवती ने विषय में आसक्त अपने पुत्र गोपीचन्द्र को इस प्रकार प्रतिबोधित किया था कि- हे वत्स ! कभी भी एक बार जगत् को ग्रसित करने की इच्छावाला यह अत्यंत बलशाली काल तुझे भी कवलित करेगा ही, इसलिए तेरे भोग-विलास को देख-देख कर मेरी दोनों आँखें दुःख से जल को छोड़ रही है । हा ! यह ही भोग-विलास तुझे मानुष्य के महत्त्व से नीचे गिरा रहा है और बल से दुर्गति के मार्ग पर चढ़ा रहा है । इसलिए इस नरक-यातना के नायक विषयभोग को छोड़ और शाश्वत सौख्य देनेवाले वैराग्य को ही भज। इस प्रकार माता के उपदेश से तत्काल गोपीचन्द्र विषय विमुख होकर प्रतिबोधित हुआ । वसुमती ने तो निर्मल सन्मार्ग पर प्रवृत्त होते हुए भी अपने पुत्र को बड़े आयास के साथ गर्हनीय और दुर्गतिदायी मार्ग में प्रवर्त्तित किया । सदाचार से पुत्र के माता-पिता को और खुद को बड़ा ही लाभ होता है और कुमार्ग में प्रवृत्ति से

कितनी हानि होती है, यह प्रायःकर सभी को ज्ञात ही है । इसलिए माता-पिता को, पुत्र को सन्मार्ग में ही प्रवर्तन कराना चाहिए किन्तु वसुमती के समान कदापि कुपथ पर नहीं ।

अहो ! मोह का माहात्म्य, पूर्व में जो कयवन्ना निरंतर शास्त्र-चर्चा में ही रमण कर रहा था, वह ही अब कुसंगति से मदिरा पी-पी कर प्रमाद कर रहा है । और जिसे पूर्व सदा ही काव्य आदि विनोद का ही परिशीलन था, अब उस कयवन्ना को ही वेश्या के आलिंगन, चुंबन और गायन आदि विनोद से ही कृतकृत्यता हुई थी ! पूर्व जिसे वैराग्य से अन्य कुछ भी इष्ट नहीं था, वह ही अब श्रृंगार और संगीत के रस में आकंठ निमग्न हुआ और जो पहले अपनी प्रेयसी को भी राक्षसी के समान और वैराग्य से वासित हृदय को दूषित करनेवाली मान रहा था, वह कयवन्ना आज वेश्या के विलास-भूमि पर गिर-गिर कर परमानंद को मान रहा है । जो पूर्व धर्म-कथा से ही तृप्त होता था, वह यह आज कुटिल स्त्री के भोग-विलास से ही अपने को तृप्त मान रहा है । क्योंकि-सूर्य के गम-आगमनों से प्रति-दिन यह आयु क्षीण हो रहा है । अनेक कार्य भार समूहवाले व्यापारों से काल नहीं जाना जाता है, लोगों के जन्म, जरा, विपत्ति और मरण को देखकर भय उत्पन्न नहीं हो रहा है, इससे यह अनुमान किया जाता है कि यह जगत् मोहमयी प्रमत्त करनेवाली मदिरा को पीकर उन्मत्त बना हुआ है । इसलिए इहलोक संबंधी विविध विडंबना को देखते और सुनते हुए भी लोग धर्म में ही प्रवर्त्तन नहीं कर रहे हैं ।

इसलिए ही कयवन्ना शीलशाली नव विवाहित अपनी स्त्री का भी विस्मरण कर वेश्या का ही किंकर होकर उसके राग पाश से बाँधा हुआ पशु के समान एक पद भी चलने के लिए समर्थ नही हो रहा था । जो विलासी मित्र था, वह भी वेश्या के राग पाश में गाढ़

से श्रेष्ठी के पुत्र को बाँधकर और श्रेष्ठी के पास से तुष्टि-दान को ग्रहण कर कृतकृत्य बना। जिस वेश्या पर कयवन्ना अनुरागी हुआ था, वह देवदत्ता नाम से प्रसिद्ध थी। यह नृत्य आदि में कुशल होती हुई भी सदाचारिणी ही थी, वह किसी अन्य पुरुष को नहीं भजती थी, किन्तु केवल कयवन्ना को ही भजती थी। इस वेश्या के साथ क्रीड़ा करते कयवन्ना को अपेक्षित धन माता वसुमती भेजती थी। इस प्रकार उसके साथ क्रीड़ा करते कयवन्ना को रात्रि-दिन का भी भान नहीं रहा।

एक दिन वह कयवन्ना उसके साथ आनंद सहित महल में बैठा हुआ था, तब शरद्-ऋतु की चन्द्रिका भी उनके अनुराग को बढ़ा रही थी। इसी बीच किसी अनुचर ने नीचे से कहा कि- हे स्वामिनी ! कोई एक पुरुष कयवन्ना के साथ मिलने के लिए आया हुआ है, यदि आपका आदेश हो तो उसे ऊपर भेजूँ ? अब वह पुरुष आएँ, इस प्रकार उसके कहने पर आये उस पुरुष को वहाँ लेकर आया! तब उस पुरुष ने कहा-मेरे मुख से तुम्हारे माता-पिता जो कह रहे है, उसे तुम सुनो। हे वत्स ! तेरा कल्याण हो, घर को छोड़कर वहाँ निवास कर रहे तुझे बारह वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, परन्तु आज-तक तुम घर आने की इच्छा नहीं कर रहे हो। और तुझ समान अत्यंत योग्य और बड़े कुल में जन्म को प्राप्त सत्-पुत्र को यह इस प्रकार से करना नहीं घटता है। हम तेरे माता-पिता अब वृद्धावस्था से जर्जरित कीये गये हैं। इसलिए ही तुझे देखने के लिए हम अत्यंत उत्सुक हैं। इसलिए शीघ्र चले आओ और घर पर स्थित तथा दूकान के सकल धन की संभाल लो। तुम आज, कल अथवा परसो आओगे, इस प्रकार के मनोरथ को करते हुए हमने बारह वर्ष को व्यतीत कीये है। तुम्हारें नहीं आने से हम दोनों को बड़ा दुःख हुआ

है, इसलिए शीघ्र ही आकर समस्त गृह-कार्य को देखकर हम दोनों को सुखी करो, तेरे बिना अन्य कोई भी धन और गृह को देखनेवाला नहीं है, इसलिए ही मैं तुझे बुलाने के लिए यहाँ पर आया हूँ।

इस प्रकार सेवक के कहने पर कयवन्ना ने उससे कहा कि- अरे ! तुम ऐसा क्यों बोल रहे हो ? क्या यहाँ निवास करते मुझे बारह वर्ष व्यतीत हो चुके हैं ? मैं तो उतनी रात्रियों को ही जानता हूँ। प्रेम की बहुलता से माता मेरे विरह को चिर समय तक सहन करने के लिए समर्थ नहीं हो रही है, इसलिए ही उतनी रात्रियों को भी उतने वर्ष जान रही है। तब आश्चर्य-चकित हुए उस संदेश-हारी पुरुष ने पुनः कहा कि-हे श्रेष्ठी ! आपकी माता को बारह दिनों में बारह वर्ष का भ्रम नहीं हुआ है, किन्तु काम-परवशता से दिन-रात ज्ञान-विवेक आदि महा-रत्नों को चुरानेवाली इस वेश्या के साथ क्रीड़ा करते आप ही व्यतीत हुए बारह वर्ष को भी उतने ही दिन मात्र मान रहे हो।

इस प्रकार दूत के वचन को सुनकर श्रेष्ठी के पुत्र ने कहा इस प्रकार ही हो, परन्तु अब तुम जाओं और प्रणाम सहित मेरे माता-पिता को तुम यह कहना कि कितने ही दिनों के बाद तुम्हारा पुत्र आयगा, इसलिए आप दोनों कोई चिन्ता न करे। आपको देखने के लिए मैं भी उत्सुक हूँ किन्तु अब सहसा ही इस सुख को छोड़कर वहाँ आने के लिए मन अत्यंत खेदित हो रहा है। इस प्रकार कयवन्ना के वचन को लेकर वह दूत जैसा आया था, वैसे ही प्रस्थान किया और आकर के समस्त वृत्तांत उन दोनों से कहा।

उस अवसर पर बड़े दुःख को करते हुए अत्यंत वृद्ध धनदत्त ने वसुमती से कहा कि- हे प्रिये ! पूर्व में तूंने मेरे वचन को नही गिना था, अब उसके फल को देखो, पुत्र को विलासी बनाने की इच्छा करती हुई अब पुत्र से भी रहित हुई हो। और अधिक क्या कहूँ ? उसके

मुख को नही देखते हम दोनों को बारह वर्ष बीत जाने पर भी जिसके लिए तूंने यह सर्व ही किया है, उस वधू को भी भूलकर और लज्जा को छोड़कर कुसंग से वही पर रह रहा है। पुत्र की शिक्षा के लिए वैसा आचरण करती आपने और वधू ने सर्वनांश को प्राप्त किया है। इस प्रकार वे तीनों भी निराश होते हुए पश्चात्ताप करने लगें। यह उस वेश्या को छोड़कर कैसे पुनः घर में आयगा ? इस प्रकार विचार करते हुए भी उन दोनों ने किसी उपाय को प्राप्त नही किया ? उससे वे दोनों उस चिन्ता से निरंतर खेदित होते हुए, जरा से जीर्ण बने, नीरक्त कीये गये, भोजन रहित होते हुए पुत्र के शोक से ही मृत्यु को प्राप्त हुएँ।

तत्पश्चात् एकाकी जयश्री सतत महा-दुःख को भोग रही थी और इस ओर दूकान के कोश में से उन कार्य-कर्त्ताओं ने यथा-भाग सर्व धन को आत्म-सात् किया तथा जो घर में था उसे भी जयश्री ने पति के आदेश से उसी वेश्या के घर में भेजा। इस प्रकार धन से नष्ट बनी वह जयश्री अपने उदर-पूर्त्ति को करने के लिए भी दुःख देख रही थी। तब अन्य उपाय को नहीं देखती हुई तकवे से धागा बनाकर काल व्यतीत करने लगी। हा ! दुर्दैव का विलास किया गया कैसा हुआ है ? जिससे कि सुख की इच्छा से अनुष्ठान किया हुआ उसका सकल भी प्रयास कष्ट के लिए ही हुआ है। भाग्य के विपरीत हो जाने पर महान् पुरुषों को भी ऐसी ही दुःखी-अवस्था उत्पन्न होती है, क्योंकि यें जीव भाग्य के अनुसार ही सुख-दुःख को प्राप्त करते हैं, जब-जब अशुभोदय आता है, तब-तब अवश्य सभी के द्वारा भोगना ही पड़ता है।

इस प्रकार अब अपनी दुःखी अवस्था को विचार करती हुई जयश्री शोक-सागर में निमग्न बनी। अब मेरे द्वारा क्या करना चाहिए ? अथवा मुझे धर्म से विरोध रहित कैसे जीवन निर्वाह करना

चाहिए ? इत्यादि बहुत प्रकार से विचार करती हुई अंत में उसने ऐसी युक्ति का स्मरण किया कि पति के द्वारा चिर समय से पालन की हुई, अच्छी प्रकार से पढ़ाई हुई और नर-भाषा से कहनेवाली यह सारिका पक्षी घर में है । मैं मानती हूँ कि इसे ही संदेश-हारी कर जो उनके समीप भेजूँ तो इष्ट सिद्ध होगा ।

इस प्रकार मन में निश्चय कर, उसके समीप आकर मेना को इस प्रकार शिक्षा देने लगी कि- हे प्रिय-सारिका ! बहुत दिनों से मेरे पति के द्वारा चिर समय तक पालन की गयी तुम बालक के समान इस घर में रह रही हो, और मेरे पति के रहते तुमने बहुत भोगों को भोगे है, इसलिए अब उसका प्रतीकार करो । मेरा और तेरा पालन करनेवाला अब वेश्या के घर में है, वहाँ जाओं और मेरा कहा तुम यथावत् उनसे कहना कि-हे नाथ ! आपकी सहचरी जो जयश्री है, वह बारह वर्षों से आपकी वियोग रूपी अग्नि से जलायी जा रही है, उस दिन से आज पर्यंत आपको नहीं देखती हुई उसने निद्रा, श्रृंगार को, शरीर की शुश्रूषा को छोड़ दिया है, मैं और अधिक क्या कहूँ ? उसकी दुःख-अवस्था को कहने के लिए जीभ भी नहीं खड़ी हो रही है और मेरे मुख से आपको इस प्रकार से कह रही है कि मेरे लिए आप हँस होकर भी कैसे काकपने को प्राप्त हुए हो ? मैं स्वर्ण की बुद्धि से आपके समीप आयी थी, परन्तु प्रान्त में आप पित्तल ही बने हो । हे प्राणेश ! मेरी ऐसी कर्कश वाणी से आप कोप को मत प्राप्त करो, किन्तु इस अपराध को क्षमा कर आप ही एक शरणवाली, अनाथ, और अनन्य गति वाली मेरा आप रक्षण करो । आपके दर्शन रूपी अमृत-पान की कांक्षावाली जो मुझको आप चिर समय तक खेदित कर रहे हो, क्या उसे आप उचित मान रहे हो ? आप गुणवान् और विचारवान् हो, इसलिए मेरे ज्ञान से अथवा अज्ञान से हुए भी

अपराध को आप क्षमा करो । आप शीघ्र से मुझ निरपराधिनी, चिर-विरहिणी, जीवित आशा को भी छोड़ती दासी को देखे । बहुत काल से आपके विरह रूपी अग्नि से जलायी जाती हुई अब अधीर बनी किसी भी प्रकार से मन में लेश-मात्र भी धैर्य को धारण करने के लिए समर्थ नहीं हूँ। निरंतर नयन-युगल से उत्पन्न प्रभूत पानी से मैं भीगी हुई रह रही हूँ और बड़े कुल में जन्म लेकर कुल-लज्जा को तिलांजलि देकर अति-निकृष्ट वेश्या के घर में रहना आप जैसे श्रुतिशाली पुरुषों को लज्जा को ही उत्पन्न करता है । मैं मति-विकल कोई अबला आपकी दासी हूँ, इसलिए और अधिक क्या कहूँ ? हे प्रियतमे ! हे मेनके ! शीघ्र ही उडकर वहाँ जाओं और इस सर्व संदेश को यथावत् भर्त्ता से कहो, इसप्रकार उसे संदेश देकर और गवाक्ष में आकर जयश्री खड़ी हुई ।

उस अवसर पर अति-विस्तृत और विशाल महल को देखकर निर्धनपने से प्रेत-वास के समान भयंकर मानती हुई और चारों ओर देखती हुई दुःख से पूर्ण हृदयवाली वह सुचिर समय तक अत्यंत रोने लगी थी । उस अवसर पर कोई आश्वासन करनेवाला भी नहीं था, इसलिए चिर समय के रुदन से उसका आँचल भी अत्यंत भीग चुका था और सतत रोने से उसकी दोनों नेत्र भी उच्छून हुई थी। वहाँ अकेली जयश्री को अधिक रोती हुई और बार-बार आँचल से अश्रु-धारा को दूर करती हुई को देखती हुई मेना भी दुःख से आतुर बनी रोने लगी थी । इस मेना के रुदन से जयश्री अधिक खेद को प्रास हुई । इसलिए धैर्य का आलंबन लेकर उसके आँसुओं को अपने आँचल से पौंछा । उसी अवसर पर जयश्री के शुभ-सूचन के लिए वाम-अक्षि तीव्र से फड़कने लगी थी । और जैसे कहा है कि-सुग्रीव और राम के मित्रत्व के प्रसंग में, सीता के, कपीन्द्र वालि के और

रावण के कमल-कनक-दहन के आकारवाले वाम-नेत्रों परिस्फुरण होते हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि स्त्रियों का वामाक्षि स्फुरण तत्काल भावी शुभ-फल सूचक है ।

तब दुःख के अंत को जानती हुई जयश्री ने ऊपर देखा था, अकस्माद् ही वहाँ पर आये किसी पुरुष को देखा । साधारण वेष को धारण करता हुआ यह पुरुष लज्जा और शोक सहित दोनों नेत्रों से अश्रु-धारा को छोड़ रहा था । इसे देखकर वह मन में इस प्रकार विचारने लगी कि यह कौन है ? और किस हेतु से सहसा ही यहाँ पर आया है ? तब उसने कहा कि- हे प्रेयसी ! तुम कुछ भी शंका मत करो ! दुर्दैव विपाक के योग से तुझ अनुरागी और सुशीला को छोड़कर और कुसंग के दोष से अज के समान गर्हनीय आचारवाला और निर्लज्ज वह मैं ही कयवन्ना हूँ । अहो ! मैंने तुझे कितना क्लेश दिया है ? पूर्व में एक बार भी तुझे सुखिनी कीये बिना आज पर्यंत दुःख रूपी समुद्र में ही डुबाया है । अपने अत्यंत निर्मल भी कुल को कलंकित करता हुआ वह मैं ही निर्लज्ज हूँ और कुलीन भी स्व-स्त्री को छोड़कर वेश्या के घर में उसके अनुराग से चिर समय तक निवास करता हुआ अवश्य ही मैं नराधम हूँ । माता-पिता को वियोग रूपी अग्नि से भस्मसात् करता हुआ मैं नर-पिशाच ही हूँ। इस प्रकार अपने कुलाचार और धर्माचार को जलांजलि देकर दुर्गति प्रदायी कुमार्ग में प्रवर्त्तन करता हुआ वह मैं ही अज्ञानांध हूँ । हे प्रेयसी ! तुम मुझे गृह-देवता के समान अत्यंत पूजनीय हो, कुलीन हो और धर्मवती हो, तुम धैर्य-धारिनी हो तथा संकट में गिरकर भी उभय कुल को निर्मल करनेवाली हो और मैं यह जान रहा हूँ कि तुम्हारे अति-समुज्ज्वल शील के प्रताप से पुनः आया हूँ । तुम्हारे ऐसे प्रेम की परिपूर्णता ने ही बल से खींचकर मुझे यहाँ पर ले आया है । हे देवी ! मैंने जो

अपराध किया है उसे तुम क्षमा करो । इस प्रकार भर्त्ता के कहे सखेद और अनुनय वचन से लज्जा से क्षण-भर नम्र मुखवाली जयश्री पति से कुछ भी कहने की इच्छा नहीं कर रही थी, किन्तु अंजलि जोड़ती हुई भर्त्ता से इस प्रकार कहने लगी कि-

हे स्वामी ! आज भी कुछ-भी नहीं गया है, सकल भी पुनः होने की संभावना है, इसे आप सत्य जानो । इतने विशेषण से आप मुझे अत्यंत बड़ी मत करो क्योंकि वैसे वचनों से मैं लज्जित हो रही हूँ । मैं आपकी दासी हूँ, इसलिए उसके उचित वचन से ही मुझे कहे और जो आज तक मैंने दुःख को भोगा है, वहाँ पर भी आपको लेश से भी दोष नहीं दिया जाता है, किन्तु पुरा-कृत निज कर्मो का ही दोष है । इसलिए आपकी क्षमा-प्रार्थना भी घटित नही होती है । अब भाग्य से आप यहाँ आये हो उससे अनुमान किया जाता है कि मेरा भाग्य भी अवशेष रहा हुआ है । जो कि अब आपके घर में दुर्दशा हुई है, परन्तु भविष्य में सर्व परिपूर्णता को प्राप्त होगा, वहाँ पर आप संशय न करो क्योंकि हम दोनों की अन्तर आत्मा विशुद्ध और शुभ भाववाली है । इस प्रकार उस जयश्री ने पश्चात्ताप को प्राप्त हुए भर्त्ता को आश्वासित किया ।

इस ओर वह देवदत्ता वेश्या कयवन्ना के ऊपर अत्यंत प्रीति कर रही थी । तो क्या हुआ जिससे कयवन्ना ने उस अनुरागिनी को भी छोड़ दी थी ? तुम इसे इस प्रकार से जानों -

जब कयवन्ना का गृह निर्धनपने को प्राप्त हुआ, तब उसकी प्रेयसी उसे अल्प भी धन भेजने के लिए समर्थ नही हुई थी । तब उसे निर्धन जानती हुई उसकी अक्का देवदत्ता से इस प्रकार कहने लगी कि- हे वत्से ! इसके घर से कोई भी कुछ-भी नहीं भेज रहा है, इसलिए अब इस रंक को छोड़ो और घर से बाहर निकालो, जो तुझ

जैसी वेश्या विलास कर रही है, वह कभी-भी निर्धन को नहीं भजती है, किन्तु सधन दातार को ही भजती है । जैसे शाखा-पत्ते आदि से रहित वृक्ष को चिर समय से निवास करनेवाले पक्षियाँ भी तत्काल ही छोड़ देते हैं अथवा जैसे जलों से विहीन सरोवर को मुसाफिर छोड़ते हैं, तथा वेश्या तो केवल धन की इच्छा से ही बाहर से प्रेम को दिखाती है, न कि कभी भी वास्तविक को और जब तक बहुत धन देता है, तब तक ही उस पर अनुरागिनी रहती है, इस प्रकार यह वेश्याओं की कुल पद्धति है और निर्धनता को प्राप्त हुए पुरुष के मोह में नही गिरना चाहिए, उस वृद्धा की उक्ति को वह देवदत्ता अति-श्रेष्ठ नहीं मान रही थी क्योंकि इस देवदत्ता ने उसके साथ यावज्जीवन प्रीति को की थी और वह अन्य के समान धन मात्र कांक्षावाली नहीं थी किन्तु प्रेम की ही इच्छावाली थी, इसलिए ही उसने क्रोध सहित अक्का से कहा कि- हे अक्के ! तुम जैसा कह रही हो, मैं वैसा करने के लिए समर्थ नहीं हूँ और उत्तम मनुष्यों का चित्त द्विविधता को धारण नही करता है, किन्तु एकाकार ही होता है । और जिनका मन प्रति-क्षण विविध संयोग-वियोग करने की इच्छा से चक्र के समान परिभ्रमण कर रहा है, वह मानवीय नहीं है, किन्तु उसे पाशवीय ही जानो । और मेरे द्वारा तो यावज्जीवन उस एक पर ही निज मन को अर्पित किया गया है । वहाँ पर मैं कदापि विपरीतता को नही करुँगी । जो वैसा करने की इच्छा करती है, वह लोक में अधम-अधमता को अंधता को फैलाती है, इसलिए मैं अन्य दातार अथवा गुणी-जन की इच्छा नहीं करती हूँ । इस प्रकार कयवन्ना को छोड़ने की इच्छावाली अक्का देवदत्ता के साथ बार-बार कलह कर रही थी।

जब यह देवदत्ता उस वृद्धा का कहा नहीं कर रही थी, तब वह अक्का उसके निष्कासन के उपाय को सोचती हुई प्रान्त में एक दिन

पुरुष से इस प्रकार एक कहने लगी कि- अरे ! यह कैसा निर्लज्ज है? लेश-मात्र भी इसके शरीर में लज्जा उदय को प्राप्त नहीं हो रही है । यह माता-पिता की मृत्यु होने पर भी अपने घर जाने की इच्छा नहीं कर रहा है । ऐसे पशु तुल्य के जन्म से केवल पृथ्वी ही भार से व्याप्त हुई है । इसप्रकार उस दुःसह कटू उक्ति को सुनकर तत्काल ही वह अपने घर के प्रति चलने लगा । इसके चले जाने पर यह सर्व जानकर देवदत्ता अत्यंत खेदित होती हुई अक्का ऊपर आक्रोश करने लगी ।

इस ओर जब यह कयवन्ना अपनी प्रेयसी जयश्री के साथ आलाप कर रहा था, तब सर्व आभरणों से मंडित कोई एक अबला वहाँ आकर आगे खड़ी हुई और कहने लगी कि- हे प्राणेश ! जो चन्द्रिका चंद्र के बिना रह सके तो मैं भी आपके बिना रहूँ और आपने मुझे सुख पूर्वक छोड़ा है किन्तु मैं आप प्राणनाथ को नहीं छोड़ूँगी और यावज्जीवन आपकी दासी होकर ही रहना चाहती हूँ और आप से यही प्रार्थना कर रही हूँ कि आगे पुनः इस प्रकार मुझे मत छोड़े ।

हे सुज्ञ-जनों ! वह देवदत्ता अक्का के साथ कलह को कर अति-प्रिय कयवन्ना को नहीं देखकर उस महल को वन के समान दुःखप्रद जानती हुई और सार-भूत आभरणों को और महा-मूल्यवान् वस्त्रों को लेकर कयवन्ना के घर में आयी थी । और वहाँ आकर दोनों हाथों से अंजलि जोड़कर तथा उसके आगे उन आभरणों को रखकर इस प्रकार से कहने लगी थी कि-हे जीवितेश ! पूर्व इन आभरणों को आपने ही दीये थे और आगे भी इस देह के साथ इन आभरणों के स्वामी आप ही हो, इसलिए इनको बेचकर आप घर की व्यवस्था करे ।

इसप्रकार के आश्चर्य को देखकर जब जयश्री आश्चर्य-चकित बनी खड़ी थी, तब देवदत्ता ने उसे भी सादर बड़ी बहन के समान

प्रणाम किया और मधुर वचन से आलाप किया । उस अवसर पर उन दोनों ने सोदर दो बहनों के समान परस्पर किसी अकथनीय ही प्रीति को प्राप्त की थी और सपत्नीपने को छोड़कर तथा मन में लेश-मात्र भी ईर्ष्या नहीं कर दोनों भी आनंदित हो रही थी । तब उन दोनों के प्रमोद-सागर ने सीमा को छोड़ दी थी और उन दोनों को प्रमोदित देखता हुआ कयवन्ना भी अत्यंत संतुष्ट हुआ था और वह प्रेम-मूर्त्ति समान इन दोनों के साथ सुख का अनुभव करता हुआ समय को व्यतीत करने लगा था ।

अब एक दिवस कयवन्ना ने देवदत्ता के द्वारा लाये हुए आभरण को किसी दूकान में बेचकर उसके अर्ध-भाग को दोनों पत्नीयों के निर्वाह के लिए स्थापित किया था और अर्ध-धन से व्यापार करने की इच्छा कर रहा था । अब एक दिन किसी एक जल-जहाज के व्यापारी का जहाज जाने जा रहा है, इसप्रकार सुनकर उस जहाज में ही बैठकर व्यापार करने की इच्छा से देशान्तर जाने की इच्छावाला हुआ था । इसलिए ही घर की व्यवस्था कर और दोनों पत्नीयों को बुलाकर कहने लगा कि- हे देवीयों ! अब धन के उपार्जन के लिए मैं देशान्तर जाने की इच्छा कर रहा हूँ, इसलिए तुम दोनों तब तक मेरे वियोग को सुख से सहन करो और अपने आचार पालन में तत्पर आप दोनों ही अवसर पर धर्म की भी आराधना करें और यथा-अवकाश समाज की स्त्रियों को एकत्रित कर अपने सद् विचार का भी प्रवर्त्तन करे । हे प्रेयसीयों ! आप जैसी क़ला-कुशल और चतुर स्त्रियों को मैं अन्य क्या कहूँ ?

इस प्रकार दोनों स्त्रियों से संभाषण कर वह सायंकाल में घर से चलने लगा था । उस अवसर पर दोनों स्त्रियों ने कहा कि- हे प्राणनाथ ! आप जाओं इसप्रकार कहने के लिए कैसे भी जीभ उठ

नहीं रही है, परन्तु इसप्रकार से मांगलिक अवसर में अपशकुन न हो, इसलिए उसे भी सुख पूर्वक ही हम दोनों कह रही है और अब आनंद से उत्पन्न हो रहे नयन-जल को भी यह अमंगल है इसप्रकार के भय से उसे भी हम दोनों नही छोड़ती हैं किन्तु केवल यह ही आन्तरिक हर्षोद्गार विलास कर रहा है कि आप कुशल होते हुए अपनी इष्ट-सिद्धि कर और शीघ्र से यहाँ आकर हम दोनों को आनंदित करे, शासन-देवता आपके मार्ग को सुखमय करे और विघ्नों को नष्ट करें और देशान्तर में सदा ही आप सावधान से रहे, और लेश-मात्र भी हमारे लिए दुःखित न बनें और गृह आदि की भी चिंता न करे तथा कदापि हम दोनों को न भूलें । मैं इसे ऐसा जानता हूँ कि साक्षात् लक्ष्मी-सरस्वती के आशिष के समान मानता हुआ कयवन्ना किसी अन-अनुभूत आनंद को ही प्राप्त किया था, इसलिए ही प्रमोदित हुआ यह उस आनंद से कल्लोलित किया गया वहाँ से प्रयाण किया । और जहाज प्रभात में चलेगा, इसलिए रात्रि के समय कहीं पर रुककर विश्रान्ति करनी चाहिए, इस प्रकार की बुद्धि से नगर से बाहर एक देवालय में प्रवेश किया और वहाँ उसने एक भग्न प्रायः मंच और अत्यंत जीर्ण बनी एक बिछौनी देखी थी, उससे उस बिछौनी को ही मंच के ऊपर रखकर सो गया था ।

अब सुख से सोया हुआ यह कयवन्ना स्वप्न में गृह-लीला और व्यापार को देख रहा था तथा अर्ध रात्रि के समय में चारों ओर अंधकार-समूह के फैल जाने पर और सकल मनुष्य के निद्रा-देवी की गोद में सो जाने पर, लोगों के शब्दों से रहित और अति-भयंकर ऐसे मध्य-रात्रि के समय में थोड़ी-ही दूरी में आती हुई पाँच स्त्रियाँ दीख रही थी । वहाँ पर एक स्त्री हाथ में दीपक को धारण की हुई थी और इधर-उधर देखती हुई वें पाँचों स्त्रियाँ उस मंदिर के समीप में

आयी । उन स्त्रियों में एक वयो-वृद्धा थी और चार तारुण्य से परिपूर्ण थी । हाथ में दीपक धारण की हुई वृद्ध-स्त्री उस देवालय में आकर मंच के ऊपर सोये हुए एक पुरुष को देखा और आकृति से उस पुरुष को भव्य और कुलीन जाना । तत्पश्चात् वृद्धा ने उन चारों ही तरुणीयों को बुलाकर आज्ञा दी कि- हे तरुणीयों ! आज भगवान् प्रसन्न हुए है और मेरा मनोरथ सिद्ध हुआ है । शीघ्र ही तुम खाट सहित सुख से सोये हुए इस पुरुष को उठाकर अपने घर ले जाओ और विलंब मत करो। इसप्रकार वृद्धा की उक्ति को सुनकर उन्होंने तत्काल ही वैसा किया । वह वृद्धा दीपक से मार्ग को दीखाती हुई आगे चलने लगी। वें उस खाट को लेश-मात्र भी नही कँपाती हुई और मौन को ही धारण करती उस वृद्धा के पीछे चलने लगी । वृद्धा के भय से शीघ्र से उन्होंने पुरुष सहित उस खाट को अपने घर प्राप्त कराया ।

हे भव्यों ! वे युवतियाँ कौन थी ? इस प्रकार के निवेदन बिना तुमको कथा का आस्वाद प्राप्त नहीं होगा, यह मानकर उनका परिचय दिया जाता है कि- ये उस वृद्धा के पुत्र की पत्नियाँ थी । उसी रात्रि में दो-तीन घड़ी पूर्व ही उस वृद्धा का एक तरुण और निःसंतान पुत्र साँप से डंसा हुआ मरण प्राप्त हुआ था और उसके गृह में बड़ी समृद्धि थी । उस समय के राज-नियम के भय से यदि संतान रहित पुत्र मर जाय तो सर्व धन को राजा ही आत्मसात् करेगा, अथवा चोर ही इस सर्व धन का अपहरण करेगा, ऐसे भय से उस वृद्धा ने ऐसा प्रयास किया था । वह वृद्धा स्त्री-जातीय होकर भी अपने औजस् और मति से एक बार महान् ओजस्वी पुरुष को जीतने में समर्थ थी। पुत्र-वधूओं पर भी अपने प्रताप को वैसे स्थापित किया था कि जैसे उसके आदेश बिना वें एक पद भी चलने के लिए समर्थ नही बनी और उसके आगे कुछ-भी कहने के लिए समर्थ नही हुई और उस वृद्धा के

आदेश से ही उन्होंने यह भी आचरण किया था । इसकी बिल्ली-नयन के समान नेत्र को और राक्षसी समान मुख को देखकर ही वे युवतियाँ अत्यंत डंरती थी, इसलिए ही दासी के समान वे उस वृद्धा के आदेश से संपूर्ण कार्य को भी करती थी ।

तत्पश्चात् प्रभात के हो जाने पर और सूर्य के अपने स्वर्ण तुल्य किरणों से संपूर्ण पृथ्वी को स्वर्ण-आभावाली करने पर कयवन्ना जाग उठा । तब दृष्टि को ऊँची कर चारों दिशाओं में फेंकता हुआ एक अति-देदीप्यमान, सुंदर और दिव्य गृह में सुख से आसीन अपने को देखा और उस पलंग के नीचे बैठी हुई तथा अनिमेष-दृष्टि से खुद को ही देखती हुई चार युवतियों को देखी । क्योंकि उस वृद्धा ने उस कयवन्ना के साथ आलाप आदि करने के लिए उन युवतियों को आदेश दिया था । एक अपूर्व देव-विमान की उपमावाले भवन को और दूसरा वहाँ पर आश्चर्य करनेवाले चित्र आदि शोभा को देख-देखकर यह आश्चर्य-चकित हुआ । तब उसने विचार किया कि-क्या यह स्वप्न सत्य है अथवा असत्य है ? अर्थात् मैं जाग रहा हूँ अथवा सो रहा हूँ ? पूर्व में कभी-भी जो नहीं देखी गयी है, ये तरुणियाँ कौन है ? और यह किसका भवन है ? इतनी संपत्ति, ये अत्यंत सुंदर स्त्रियाँ और यह विमान तुल्य भवन, यह सब मेरा नहीं था, इस प्रकार जब वह विचार कर रहा था, तब वहाँ वह वृद्धा आकर के कहने लगी कि- हे वत्स ! आज तुझे जागने में इतना प्रमाद कैसे हुआ है ? और प्रति-दिन सूर्योदय के पहले ही उठकर तुम प्रभात-कार्य को करते थे, तथा काम-विलास के आयास से शिथिल बनी इन तेरी स्त्रियों ने भी तुझे नहीं जगाया हैं ? हे पुत्र ! उठो, उठो और शीघ्र से दिन के कार्य को करो ।

इस प्रकार कयवन्ना के मन में उत्पन्न आश्चर्य रूपी समुद्र को

उस वृद्धा की प्रपंच कल्पना ने उच्छालित किया था, इसलिए वह कयवन्ना गंभीर विचार में पड़ा कि मैं इस गृह का स्वामी नहीं हूँ और यह वृद्धा मुझे पुत्र कह रही है, परन्तु यह कदापि नहीं घटता है । मैं कैसे रंभा जैसी इन चारों स्त्रियों को अपनी मानूँ ? मेरी तो दो ही पत्नीयाँ हैं और वे दोनों भी इनसे भिन्न ही है । ऐसी विपरीतता सहसा ही कैसे हुई है ? अथवा क्या मैं ही वह कयवन्ना हूँ ? अथवा अन्य हूँ? इसप्रकार संशय के उत्पन्न होने पर कितने ही अपने निर्णीत कीये हुए लक्षणों को देखने से निश्चय किया कि वह कयवन्ना मैं ही हूँ । परन्तु किसलिए अथवा किसने ऐसी अद्भुत माया रचना की है, यह नहीं जान पा रहा हूँ और सुषुप्त अवस्था में वैसा स्वप्न देखने से जो भविष्य की कल्पना करुँ तो वह भी नहीं घटता है क्योंकि निद्रित को ही स्वप्न की संभावना है किन्तु मैं अब जाग चुका हूँ अथवा अज्ञान में भ्रान्ति होती है किन्तु मैं अज्ञानी नहीं हूँ । इस प्रकार की विविध कल्पना से कयवन्ना ने जो समाधान करने योग्य है उसे जाना ।

इस ओर वे चारों युवतियाँ रहस्य में जाकर के परस्पर कुछ मंत्रणा करने लगी थी । उनमें से प्रथम युवति ने कहा कि- हे बहनों! हम समस्तों को भी क्या यह रण्डा स्व-समान ही करने की इच्छा कर रही है ? क्या लाये गये इस पुरुष को पति करने के लिए हम योग्य हैं? दूसरी युवति ने कहा कि- अरे ! इस प्रकार कभी-भी नही होगा । क्या एक ही भव में दो भव बने ? कुलीन स्त्रियों को कदापि ऐसा करना योग्य नहीं है और जो नीच-कुल में जन्म लेती है उनको ही ऐसा घटता है और हम तो सत्-कुल में उत्पन्न हुई हैं तो जिस किसी भी पुरुष के साथ कैसे पति-संबंध को करे ? तीसरी ने कहा कि- हे सखियों ! यह सर्व सत्य है किन्तु यह रंडा जो कहेगी वह ही सभी को करना पड़ेगा और उसके विरुद्ध तो एक पद भी हम चलने के लिए

समर्थ नहीं हैं अथवा न ही उसके आगे थोड़ा-भी कहने की शक्ति धारण करती है। चौथी युवति ने कहा कि- हे सखियों! यदि यह नर-पिशाची हमारे हृदय को भी काट ले, तब भी उसके आगे हम कुछ-भी करने में समर्थ नही बनेंगी।

इस प्रकार उनके बातचीत करने पर वह वृद्धा वहाँ आयी और उसे देखकर वे मौन हुई। परन्तु इसने उनकी मुख आदि चेष्टा से जाना कि यें कुछ परामर्श कर रही हैं, उससे प्रचण्डता करती हुई वह उनसे इसप्रकार कहने लगी कि यहाँ मिलकर तुम क्या पका रही हो? तुम सत्य जानो कि मेरे परोक्ष में तुम्हारे द्वारा किया गया विमर्श भी कदापि फलित नहीं होगा और जिसे करना चाहती हो उसे मेरे समक्ष ही विचार करो। मेरी आज्ञा के बिना तुम एक कदम भी नहीं चल सकती हो और आज पर्यंत मुझ समान तुम्हारें उतने वर्ष नहीं हुए है, इसलिए ही अब तुम्हें व्यावहारिक कौशल्य कैसे उत्पन्न हो ? यदि आज मुझे यह मार्ग स्फुरित नहीं हुआ होता तो कल तुम्हे भोजन करने में भी कठिनता हो और सकल धन-भवन आदि राजसात् ही हुआ होता इसलिए ही मेरे द्वारा जो किया गया है वह विचार कर ही किया गया है, वहाँ लेश-मात्र भी तुम संशय मत करो अथवा न ही मस्तकों को धूनाओं किन्तु भविष्य में श्रेयस्कर मेरी शिक्षा को सहर्ष स्वीकार कर तुम लाएँ हुए अत्यंत योग्य इस पुरुष पर भर्त्ता की बुद्धि करो और इसे बहुत और अति-गाढ प्रीति दीखाओ। मैं भी पुत्र-स्नेह को ही दीखाऊँगी जिससे यह शीघ्र तुम्हारें चिर और बहुत परिचय से तथा गाढ प्रेम से सर्व ही अपने अतीत को विस्मरित कर देगा और मैं दूसरों के भवन में रह रहा हूँ अथवा विजातीय में निवास कर रहा हूँ, इत्यादि मन में सकल कल्पना ही कदापि उत्पन्न नहीं होगी और मैं जिस गृह में पूर्व में था, वह गृह यह नहीं है तथा ये मेरे कुटुम्ब वर्ग

से अन्य है, इत्यादि सर्व भावना ही जैसे स्वप्न के समान लगे, वैसे तुम करो। परिणाम में हितकर यह ही मेरा उपदेश है और इसे तुम सभी अवश्य ही ग्रहण करो नहीं तो भविष्य में बड़ी हानि होगी, इसे तुम सत्य जानो।

इस प्रकार सासु के वचन से वें चारों युवतियाँ उसके भय से नवनीत के समान मृदुता को प्राप्त हुई धीरे-धीरे बढ़े हुए परिचय और राग-उदय आदि से कयवन्ना नामक उस पुरुष पर दाम्पत्य भाव करने लगी। पश्चात् भवितव्य-योग की प्रबलता से यह पुरुष परिपूर्ण तारुण्य-लावण्य रूपी पानी की वापी सदृश उन चारों के साथ भोग को भोगते हुए बारह-मुहूर्त्त के समान बारह वर्ष व्यतीत कीये और उन युवतियों में कयवन्ना के चार पुत्र हुए और बढ़कर इन पुत्रों के लेखन-वाचन आदि में पटुता को प्राप्त होने पर वह वृद्धा मन में सोचने लगी कि मुझे चार योग्य पौत्र के होने पर कैसे-भी राजा मेरे धन-भवन आदि को लेने में समर्थ नहीं होगा, इसलिए यह पुरुष गृह से बाहर ही कर देना चाहिए इसप्रकार विचार कर उनसे कहने लगी कि-

हे वधूओं! जिसके लिए यह पुरुष लाया गया था, वह सिद्ध हो चुका है, अब तुम्हारें पुत्रों के हो जाने पर इस पुरुष की अपेक्षा नहीं है। इस कारण से बारह-वर्ष पूर्व जिस स्थान से यह जैसे लाया गया था, उसी स्थान पर वैसे ही इसे छोड़ दो। तब वे वधूएँ कहने लगी कि- हे सासु! आप ऐसा अघटित क्यों कह रही हो? जिसे गृह में लाकर और पति के समान मानती हुई हम पुत्रवती हुई हैं और धन-गृह की रक्षा की है तथा जिसके साथ बारह-वर्ष पति के समान हमने निर्लज्ज होकर सुख का अनुभव किया है उसे हम अब अधम के समान कैसे छोड़े? इस प्रकार उनके द्वारा कहने पर वह वृद्धा बड़े

कोप रूपी आडंबर को दीखाती हुई कहने लगी कि- अरे ! क्या इस प्रकार तुम ही मेरी सासुएँ बनी हो ? जो इसे तुम यहाँ चिर समय तक रखोगी तो यही सकल धन-भवन आदि का नायक होगा, इसलिए इसे शीघ्र से इस गृह से बाहर निकाल देना चाहिए और वैसे करने में लेश-मात्र भी आलस मत करो, किन्तु इसी रात्रि में तुम इसे करो । तत्पश्चात् उन्होंने हम वैसा ही करेंगी इस प्रकार उस वृद्धा से कहकर और गुप्त रीति से बनाये गये चार लड्डुओं में चार महा-मूल्यवान् रत्नों को डालकर और उनको कयवन्ना के उत्तरीये में बाँधकर रात्रि में गाढ़ निद्रा में मग्न इसे उसी खाट के ऊपर रखकर और उसे उठाकर उसी देवालय में जाकर रखा ।

प्रभात के समय देवालय में घंटे के शब्द से कयवन्ना जाग उठा । शीघ्र से उठकर वहाँ पर बैठे हुए उसने चारों ओर देखते हुए उसी खाट पर अति-मलीन जीर्ण बिछौनी में पड़े हुए खुद को देखा। उस अवसर पर वह सोचने लगा-क्या यह स्वप्न सत्य है अथवा असत्य है ? क्योंकि अब वे मेरी चारों प्रेयसीयाँ नहीं दीखाई दे रही है और वे चारों शिशु नहीं दीख रहे है ! पूर्व में मैं जहाज-व्यापारी के साथ देशान्तर में व्यापार करने के लिए रात्रि में गृह से निकलकर यहाँ ही सोया था, वह भी झूठ नहीं है किन्तु सत्य ही है, तो जो मुझे चारों युवतियों के साथ सुखानुभूति हुई थी और चिर समय तक चारों पुत्रों के साथ जो आह्लाद हुआ था, क्या मैं इसे स्वप्न समान ही मानूँ ? नहीं, नहीं जागता कोई मनुष्य स्वप्न में देखा गया नहीं देखता है और जागते मैंने उन स्त्रियों तथा पुत्रों का चिर समय तक लालन किया है, अथवा तो उसे मैं भ्रान्ति कैसे मानूँ ? इस प्रकार उत्कट कोटि की कल्पना से भ्रान्त हुआ यह कयवन्ना उस देवालय के अर्चक से पहचाना हुआ अपने गृह में लाया गया और वहाँ आकर गृह के अंदर

प्रवेश करते हुए उसने एक बारह वर्षीय बालक को देखा ।

हे वाचकों ! यह शिशु कौन है ? यह तुम नहीं जानते हो, इसलिए ही मैं इसे निवेदन करता हूँ कि- जब यह कयवन्ना विदेश गया था, तब उसकी पत्नी जयश्री गर्भिणी थी, समय होने पर उसने ही पुत्र को जन्म दिया और वह ही आज बारह-वर्ष का हुआ है । आये हुए पति को देखकर प्रमोदित हुई वें दोनों पत्नीयाँ उसके संमुख जाकर सम्मान किया । उस अवसर पर वह बड़े आनंद से निज अनुभव कीये हुए अति-अद्भुत वृत्तांत को पत्नीयों के आगे कहने लगा । तब शाला में जाने की इच्छावाले शिशु ने भोजन माँगा, तब कयवन्ना ने गाँठ खोलकर उसे एक लड्डु दिया । उसे लेकर बालक लेखन-शाला में आ गया और मध्याह्न के अवकाश हो जाने से द्वितीय छात्र के साथ एक स्थान पर बैठकर उस लड्डु को तोड़ डाला, उसके मध्य से एक अमूल्य महारत्न उछलकर और थोड़ी दूरी पर गिर पड़ा । अति-देदीप्यमान उस रत्न को लेकर कोई कान्दविक-शिशु पलायन करने लगा और अपने उस रत्न को लेने के लिए उसके पीछे कयवन्ना का पुत्र भी दौड़ा । कितने ही दूर जाकर उस शिशु ने अपने दूकान में प्रवेश किया, तब उस दूकान में यह रोते हुए खड़ा हुआ और कहीं से आये हलवाई ने उसके कारण को जानकर और अपने पुत्र के हाथ में बहुमूल्य और अलभ्य रत्न को देखकर तथा उसे लेकर गुप्त स्थान में रखकर रोते हुए उस बालक को प्रचुर मिष्टान्न के दान से संतुष्ट किया । इस ओर मध्याह्न-वेला में कयवन्ना दोनों पत्नीयाँ सहित खाने की इच्छा से उन मोदकों को तोड़ा, तब उनके मध्य में महा-मूल्यवान् तीन रत्नों को देखें । पश्चात् उन रत्नों को बेचकर विविध बड़े व्यापारों को करते हुए बहुत धन का अर्जन कर अल्प दिनों में ही महा-श्रेष्ठी की पदवी प्राप्त की । अब इस प्रकार सकल

ऋद्धिशाली कयवन्ना उन दोनों सुशील पत्नीयों के साथ परम सुख का अनुभव करते हुए सुख पूर्वक समय को व्यतीत करने लगा ।

अब अन्य दिवस राजा श्रेणिक का अति-प्रिय सेचनक नामक हाथी पानी पीने की इच्छा से सरोवर में आया था । उस सरोवर में अंदर प्रवेश करता हुआ सेचनक एक अत्यंत बलवान् जल-जन्तु से गाढ़ आक्रांत हुआ । वैसी अवस्थावाले उस सेचनक को देखकर, उसे छुड़ाने के लिए लोगों के द्वारा कीये गये सकल भी उपाय व्यर्थ ही हुए । उससे अत्यंत खेदित होते हुए राजा ने उस नगर में प्रति चौराहें पर ढ़ोल बजवाया कि- जो कोई भी इस सेचनक हाथी को उससे छुड़ायगा, मैं उसे बहुत धन और अपनी पुत्री दूँगा । वह सुनकर हलवाई सोचने लगा कि जो मेरे द्वारा महा-मूल्यवान् रत्न प्राप्त किया गया है, जो उसे इस अवसर पर उपयोग करुँ तो मुझे बड़ा ही लाभ होगा । इस प्रकार निश्चय कर और उस रत्न को लेकर तथा वहाँ आकर उस रत्न को जल में फेंका । उस रत्न के प्रभाव से पानी दूर चला गया । पश्चात् उस रत्न को गज के समीप में रखा और उस रत्न के प्रभाव से वहाँ से पानी के दूर चले जाने पर तत्काल ही इसे छोड़कर वह जल-जन्तु पलायन करने लगा, क्योंकि जल-चर प्राणियों का बल जल में ही रहता है, उसके बाद अपाय रहित बना सेचनक अपने स्थान में आया । राजा उसके ऊपर अत्यंत हर्षित हुआ था । परंतु इस आश्चर्य को देखकर कुशाग्र बुद्धिवाले अभयकुमार ने विचार किया कि ऐसे साधारण हलवाई के घर में ऐसा महा-मूल्यवान् रत्न कदापि संभवित नही है, जैसे कि मरु-भूमि में कल्पवृक्ष के समान । किन्तु इस रत्न का स्वामी कोई अन्य ही होगा, इस प्रकार सोचकर अन्वेषण करते हुए इसने इस रत्न के नायक अंत में कयवन्ना को जाना । इसलिए उसी को राज-कन्या दी और बहुत

धन आदि भी दिया । उसके बाद यह सर्वत्र कयवन्ना-शाह नाम से प्रख्यात हुआ और सभी पौरवासीयों को मान्य हुआ । रति को भी लज्जित करती हुई तीन प्रेयसीयों के साथ स्वेच्छा से भोग को भोगता हुआ कयवन्ना-शाह अत्यंत प्रमोदित हो रहा था । वहाँ से लेकर कयवन्ना-शाह की गाढ़ -प्रीति भी प्रधान-मंत्री अभयकुमार के साथ अत्यंत बढ़ने लगी थी ।

अब एक दिन कयवन्ना-शाह को पूर्व में हुई अपनी उन चार स्त्रियों की और उतने ही पुत्रों की स्मृति होने लगी थी और उनको देखने के लिए अति-उत्सुकता भी हो रही थी, परंतु उस भवन में रहते हुए भी बारह-वर्ष गृह से कभी-भी बाहर नहीं गया था तथा उस आवास को नहीं जानते हुए उसने यह समस्त ही अत्यंत श्रेष्ठ मित्र अभयकुमार से कहा, तब अभयकुमार ने इससे इस प्रकार से कहा कि- हे मित्र ! तुम धैर्य धारण कर, थोड़े काल की अपेक्षा करो, अवश्य ही मैं शीघ्र से तुमको उन पुत्र-पत्नीयों से मिलाऊँगा । जो कि मैं इसे अतीव दुष्कर जान रहा हूँ, तो भी किसी उपाय से मैं उसे साधूँगा ही । जैसे कि- उपाय से जो शक्य है, उसे पराक्रमों से नहीं किया जाता । जैसे कि कौएँ ने कनक-सूत्र से कृष्ण-सर्प को मार डाला था । उसका उदाहरण इसप्रकार से है कि-

किसी एक वृक्ष पर कौएँ दम्पती निवास कर रहा था । उन दोनों के बालकों को वृक्ष के कोटर में स्थित काले सर्प ने खाये थे । उसके बाद पुनः गर्भवती हुई कौवी कहती है कि- हे स्वामी ! यह वृक्ष छोड़ा जाय ! यहाँ जब तक काला सर्प है तब तक हम दोनों को कभी-भी संतान नही होगी । तब कौएँ ने कहा कि- हे प्रिये ! डरो मत ! मैंने बार-बार इसका अपराध सहन किया है, अब पुनः क्षमा नही करुँगा। तब कौवी ने कहा कि आप इस बलवंत के साथ कैसे विग्रह करने के

लिए समर्थ हो ? कौवे ने कहा – इस चिन्ता से पर्याप्त हुआ । कौवी ने कहा– तो जो कर्त्तव्य है आप उसे कहो । कौवे ने कहा कि– हे प्रिये! यहाँ निकट सरोवर में सतत राज–कुमार आकर स्नान करता है । स्नान के समय उसके अंग से नीचे उतारें और तीर्थ शिला के ऊपर रखे स्वर्ण–सूत्र को चोंच से पकड़कर और लाकर इस कोटर में धारण कराऊँगा । अब कभी स्वर्ण–सूत्र को पत्थर के ऊपर स्थापित कर स्नान करने के लिए राज–पुत्र के जल में प्रवेश करने पर कौएँ के द्वारा वह किया गया । अब स्वर्ण–सूत्र के अनुसार प्रवृत्ति करते हुए राज–पुरुषों ने उस कोटर में दीखायी देते काले सर्प को मार डाला। इसलिए ही मैं कह रहा हूँ कि उपाय से ही जो संभव है, इत्यादि ।

तत्पश्चात् अभयकुमार ने एक अत्यंत–रमणीय भवन को सुसज्जित कराकर उसके मध्य में समुचित आसन पर कयवन्ना शाह की अनुरूप और मनोहर मूर्त्ति को संस्थापित कर सर्वत्र नगर में पटह बजवाया कि– यह चार–मुखवाला महावीर साक्षात् चिन्तामणि के समान सकल मनो–वांछित देता है, इसलिए ही सभी आबाल–वृद्ध स्त्री और पुरुष यहाँ आकर देखें । एक तरफ प्रत्यक्ष फल दातृत्व और दूसरी ओर राज–शासन है इस प्रकार से समस्त ही बाल–वृद्ध स्त्री और पुरुष वहाँ पर गमनागमन करने लगें । उस अवसर पर पूर्व ही अभयकुमार और कयवन्ना शाह वहाँ आकर बैठ गये थे । क्रम से आनेवाले लोगों को देखता हुआ कयवन्ना शाह प्रथम उस वृद्धा को और बाद में पुत्र सहित उन चारों स्त्रियों को देखकर पहचान लिया, परंतु उनसे कुछ भी नहीं बोला किन्तु मौन ही रहा । वे भी उस मूर्त्ति को देखकर और थोड़ा हँसकर उदासीनता को प्राप्त हुई । उसी अवसर वें चारों पुत्र उस मूर्त्ति को देखकर आलिंगन करते हुए हे पिताजी, हे पिताजी ! इस प्रकार कहते हुए उसके वस्त्र को खींचने

लगें। वहाँ एक पुत्र ने कहा कि- हे पिताजी ! आज क्या हुआ है जिससे आप नहीं बोल रहे हो ? अथवा नही हँस रहे हो ? दूसरे पुत्र ने कहा कि- हे पिताजी ! पहले आप मुझे क्षण-भर के लिए भी अपनी गोद में से अलग नहीं करते थे, इतने दिन आप कहाँ गये थें ? तीसरे ने कहा कि- हे पिताजी ! दादी मुझे प्रति-दिन डरा रही है, आप उनको क्यों नहीं रोकते हो ? चौथे पुत्र ने कहा कि आप मेरे बिना पूर्व कभी-भी भोजन नहीं किया था, तो अब आप अकेले कैसे भोजन कर रहे हो ? इस प्रकार कहते हुए वें चारों शिशु उस मूर्त्ति को उठाने लगे थें, और हे पिताजी ! उठो और अपने घर चलो, हम आपको यहाँ पर नही बैठने देगें इस प्रकार वे कहने लगे थें । इस आश्चर्य को देखने से आश्चर्य-चकित हुए अभयकुमार ने निश्चय किया कि सत्य ही ये शिशु और ये स्त्रियाँ कयवन्ना शाह की ही है । तत्पश्चात् उस वृद्धा और उन स्त्रियों को एक अलग भवन में लाकर क्रोध सहित पूछा कि- अरे ! यें शिशु किसके हैं ? और यें स्त्रियाँ किसकी हैं ? सत्य बोलो, जो असत्य कहोगी तो शूलिका की सजा दूँगा । यह सुनकर उस वृद्धा ने यथा-जात सर्व वृत्तांत को सत्य कहा । उसके बाद अभयकुमार ने धन-भवन आदि सहित तथा पुत्र सहित उन स्त्रियों को कयवन्ना शाह को दीलायी, परन्तु कृपालु कयवन्ना शाह ने यह वृद्धा दुःख को प्राप्त न करे इस प्रकार की बुद्धि से धन आदि उसे ही दिया । तत्पश्चात् सात रमणीयों के साथ सुख का अनुभव करता हुआ कयवन्ना प्रति-दिन सज्जनों की प्रीति के समान संपत्ति को बढाने लगा था । और जहाँ पुण्य है वहाँ सर्व ऐसे ही होता है । क्योंकि- जिस पुरुष के द्वारा धर्म रूपी वृक्ष का आरोपण कर उसे बढ़ाया, उससे ऐसा फल प्राप्त होता है, जैसे कि- सुकुल में जन्म, अनेक प्रकार की विभूतियाँ, प्रिय-जन के समागम से निरंतर सुख की अनुभूति, राज-सभा में

मान्यता और निर्मल यश । इसलिए सर्व ही धर्म की आराधना करें ।

अब एक बार चरम तीर्थंकर श्री महावीर प्रभु सकल पृथ्वीतल को पवित्र करते हुए राजगृह नगर में पधारें , वहाँ देवताओं के द्वारा समवसरण की रचना की गयी । तभी वन-पालक ने वीर आगमन की श्रेणिक राजा से विज्ञप्ति की । उसे सुनकर हर्ष के अतिरेक से पुलकित शरीरवाला हुआ राजा वर्धापनक को पारितोषिक देकर अंतःपुर के साथ, अनुचर और प्रधान आदि वर्ग से अनुसरण किया गया प्रभु के वंदन के लिए चला । राजा के पीछे नगर-निवासी नर-नारी गण आबाल-वृद्ध तथा सात प्रेयसीयों के साथ प्रमुदित हुआ कयवन्ना शाह भी चला । वहाँ पर आये राजा आदि क्रमशः प्रभु को तीन प्रदक्षिणा देकर वंदन किया और यथोचित स्थान पर बैठें । तब मेघ के समान गंभीर वाणी से भगवान् ने धर्म-देशना प्रारंभ की -

हे भव्य-प्राणियों ! इस संसार में सर्व असार ही है । जो कि प्राणी पुत्र-स्त्री, धन-परिवार आदि देख-देखकर आनंदित होते हैं, उसे भी परिणाम में दुःख का कारण ही जानों । इसलिए ही ऐसे विद्युत् समान जगत् में भव रूपी समुद्र में जहाज प्रायः तथा स्वर्ग-अपवर्ग को देनेवाले ऐसे धर्म की ही लोग प्रशंसा करते है । महा-सागर आकारवाले इस लोक में जो प्राणी बार-बार भ्रमण करते हुए सैंकड़ों सुकृतों से और बड़े प्रयास से भी दुःप्राप्य इस मनुष्यपने को जैसे निर्धन पुरुष भूमि में रही हुई निधि के समान प्राप्त कर स्व-कल्याण को नहीं करतें हैं, वें जीव प्रान्त में पश्चात्ताप को प्राप्त करतें हैं । इसलिए ही अति-भीषण अग्नि-ज्वाला से स्पर्शित हुए घर के समान शोक-मोह, जरा, व्याधि से आकुलित बने इस संसार में भव्य-आशयवाले प्राणियों के द्वारा क्षण भी नहीं रहना चाहिए । और वहाँ चिन्तामणि के समान अति-दुष्प्राप्य इस मनुष्य-जन्म को प्राप्त कर विज्ञ-पुरुषों

के कभी-भी प्रमाद नहीं करना चाहिए । बड़े कष्ट से प्राप्त कोटि द्रव्य को जैसे महा-मूढ़ लोग एक काकिणी के लिए छोड़ते हैं, वैसे ही कितनें प्राणी तीर्थंकरों के द्वारा प्ररूपित, शाश्वत, विशुद्ध और नित्य आनंद तथा सुख-प्रद आर्हत धर्म को छोड़कर क्षणिक वैषयिक सुख की वांछा करतें हैं । जो यह विश्व-मोहिनी लक्ष्मी प्रेयसी लग रही है, वह समुद्र के जल-तरंग के समान चपल दीखायी देती है । और प्राणियों का आयु भी कुश के अग्र भाग में लगे जल-बिन्दु के समान है और सौन्दर्य भी विद्युत्-विलास के समान ही है और इस प्रकार आधिपत्य भी स्वप्न-लीला ही लग रहा है तथा जो सांसारिक सुख है वह भी संध्याभ्र-राग के समान क्षण-भंगुर ही है, इसलिए सभी सर्व प्रपंच को छोड़कर सुख-प्रद धर्म की ही आराधना करे ।

भगवान् की अमृतमयी देशना को पी-पीकर द्वादश पर्षदा किसी अकथनीय प्रमोद को ही प्राप्त करने लगी थी । और यथा-शक्ति बहुत से भव्य-प्राणियों ने व्रत-नियम आदि भी ग्रहण कीये । तथा देशना के अंत में कयवन्ना शाह ने प्रभु को इस प्रकार पूछा कि-हे स्वामी ! मैंने भवान्तर में कौन-सा पुण्य किया था जिससे मुझे इस जन्म में ऐसी संपत्ति उत्पन्न हुई है ? तब भगवान् कहने लगे कि-

हे श्रेष्ठी ! यह सर्व ही सुपात्र-दान का ही प्रभाव है । तुम पूर्व जन्म में शालिग्राम नगर में किसी ग्वाले के पुत्र हुए थे । पिता के मरण प्राप्त हो जाने पर तेरी माता रंकता को प्राप्त हुई । एक दिवस किसी पर्व दिन में सभी के घरों में क्षीर-पाक बना था और तूंने माता से पायस की याचना की, जो कि निर्धनपने से तेरी माता कुछ-भी पकाने में समर्थ नही हुई थी, फिर भी पुत्र के वात्सल्य से पार्श्ववर्ती लोगों के घरों से दूध, शक्कर आदि उन-उन सामग्री को लाकर और पकाकर तथा थाली में पीरोसकर तेरी माता किसी हेतु से कही पर गयी थी ।

उस अवसर पर कोई मुनि गोचरी के लिए वहाँ आकर धर्म-लाभ दिया और उनको देखकर तूंने बड़े हर्ष से प्रचुर उस क्षीर-पाक को उन्हें दिया और दूध की बहुलता से शीघ्र ही उनके पात्र में वह अधिक पड़ने लगा, फिर भी तुम्हारे मन में लेश-मात्र भी खेद नहीं हुआ था, किन्तु महान् हर्ष ही उत्पन्न हो रहा था । उन मुनि के धर्म-लाभ को देकर चले जाने पर उस पात्र को चाट रहे अपने पुत्र को देखकर आयी हुई माता मन में इस प्रकार सोचने लगी थी कि- अरे ! मेरे पुत्र को कितनी क्षुधा थी जो इसने यह सर्व ही खा लिया है । पश्चात् अल्प ही काल में स्व-आयु के क्षय हो जाने पर तुम मरकर इस भव में धनदत्त-श्रेष्ठी के पुत्र हुए हो । वह तुम कयवन्ना हो जिसने पूर्व में कृत सुपात्र-दान की महिमा से इस जन्म में अपरिमित लक्ष्मी प्राप्त की है ।

इस प्रकार भगवान् के मुख से अपने पूर्व-भव के वृत्तांत को सुनकर उत्पन्न हुए वैराग्य से परिपूर्ण और अंजलि जोड़कर कयवन्ना भगवान् को इस प्रकार कहने लगा कि-हे भगवन् ! मैं अब इस संसार को असार और महा-घोर फल देनेवाला जान रहा हूँ, इसलिए जैसे मैं इसे सुख-पूर्वक तैरुँ वैसे आप कृपा लाकर शीघ्र करो । प्रभु ने भी योग्य मानकर संसार रूपी वन के विच्छेद विधान में दक्ष और अभिरूप दीक्षा देना स्वीकार किया । उससे प्रमोद से युक्त बना कयवन्ना प्रभु को वंदन कर और गृह में आकर पुत्रों को सर्व समर्पित कर और प्रेयसीयों के समीप में आकर इस प्रकार से कहने लगा कि- हे प्रेयसीयों ! इस संसार में बड़ा ही क्लेश दीखायी देता है, इसलिए ही मैं सकल दुःखों को क्षय करनेवाली और शिव सुख को देनेवाली ऐसी दीक्षा को लेने की इच्छा कर रहा हूँ । तब उन्होंने कहा कि- हे स्वामी ! हम भी उसी को चाहती हैं । इस प्रकार दीक्षा ग्रहण की

इच्छावाले कयवन्ना ने सात प्रेयसीयों सहित सकल दीन-अनाथ लोगों को बहुत दान देता हुआ महोत्सव के साथ वीर-प्रभु के पास में दीक्षा ग्रहण की। निरतिचार संयम का परिपालन कर और विविध दुष्कर तप का आचरण करते हुए तथा प्रभु के साथ विहार करते हुए ध्यान रूपी अग्नि से पूर्व के एकत्रित कीये हुए कर्म रूपी काष्ठ को भस्मसात् कर कयवन्ना महा-मुनि ने कैवल्यज्ञान प्राप्त किया। पश्चात् शिव-सुख का अनुभव किया। अहो ! ऐसा अद्भुत प्रभावशाली सुपात्र-दान सभी को प्रशंसनीय और नमस्करणीय है और सभी सुख-इच्छुक भव्य-प्राणियों के द्वारा वह अवश्य ही सहर्ष करना ही चाहिए, इति शम्।

मैं यतीन्द्र-विजय ने पंडित-जनों के सुख के लिए इस प्रख्यात और निर्मल चरित्र को वि.सं.१९८५ द्वितीय श्रावण शुक्ल प्रतिपदा गुरुवार के दिन संपूर्ण किया है।

प्रभु भक्ति में जो आत्मा दूध में सक्कर सम एक-मेक हो जाता है, वही प्रभु भक्त शेष तो दूध में पानी सम

जिनभक्ति = भगवानमय सम बन जाना ।
अहम में से सोहं बन जाना ।

प्रथम जिन को पहेचानो, फिर जिन को पूजो
जिनदर्शन वही, जहाँ निज दर्शन है ।

जिन पर बहुमान बढाओ फिर विधि अपनाओ

जिनको पूजो और उनका कहना न मानो
तो पूजने का अर्थ क्या ?

नाम देव का और काम राग-द्वेष का
वे देव नहीं हो सकते है !

आत्मा को परमात्मा बनाना हो तो बहुमान सह विधिपूर्वक जिनदर्शन-पूजन आदि धर्मानुष्ठान अपनाओ

BHARAT GRAPHICS - Ahmedab
Ph. : 079-22134176, M : 9925020106